परिचय

"डुग्गर के कवि और उनकी कविता" नामक पुस्तक-माला के इस पहले भाग 'नीहारिका' के संकलन-सम्पादन का गौरवपूर्ण उत्तरदायित्व मुझे दिया गया है। यह कैसा बन पड़ा है यह आप देखें। इस पुस्तक माला के चार भाग और भी छप गये हैं, जिनमें डोगरी के वर्तमान कवियों की रचनाएं प्रस्तुत की गई हैं।

पहले भाग में मुझे जिन कवियों की रचनाओं को संकलित करना था उनमें से श्री हरदत्त शास्त्री के सिवाय किसी दूसरे कवि का कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। कवि दत्तु का आज तक केवल एक डोगरी पद प्राप्त हो सका है। वह भी श्री गौरी शंकर (रिटायर्ड प्रिंसिपल पञ्जाब) के सौजन्य से। दत्तु के वंशजों में से दो एक की फुटकर रचनाओं की जानकारी भी उन्हीं के उद्यम का फल है। दत्तु आज से दो सौ वर्ष पहले भड्डु (तहसील बसोहली) में हुए थे।

'नीहारिका' के दूसरे प्रमुख कवि हैं श्री पं० गंगा राम जी, जो स्वर्गीय महाराजा रणवीर सिंह जी के समकालीन थे। उनकी एक कविता मुझे जैसे मिली वह भी एक संयोग ही था। जम्मू शहर के मुहल्ला पक्की ढक्की में मान्यवर वेदपाठी श्री सन्त राम जी हैं। इस समय उनकी आयु ९० तथा १०० के बीच है। आज से लगभग १५ वर्ष पहले मैं उनकी सेवा में हाज़िर हुआ और जिज्ञासा प्रगट की कि क्या हमारी धरती पर आज से पहले कोई डोगरी के कवि नहीं हुए? बात का प्रसंग श्री हरदत्त जी की कविता को ले कर चला था। श्री हरदत्त जी रिश्ते में वेदपाठी जी के भतीजे लगते थे। उस समय वेदपाठी जी ने पं० गंगा राम जी का ज़िकर किया और स्मरण शक्ति पर थोड़ा बल डाल कर उनकी 'कंडिया दा बस्सना' शीर्षक एक लघु-कविता सुनाई। मैं सुन कर पुलकित हो उठा। एक सफल कविता की पूर्ण भावप्रवण गरिमा उसमें भरी थी। दत्तु के उस अमर कविता-पद के समान ही यह भी एक ललित, कमणीय और कलापूर्ण कृति है।

मुझे एक पूर्ण काव्य-ग्रन्थ पा जाने जैसी प्रसन्नता हुई। वेदपाठी जी को गंगा राम जी की कोई अन्य रचना स्मरण नहीं थी। मैं कृतकृत्य हो कर उनके पास से लौटा।

कुछ ऐसी ही कहानी इस संकलन में दी गई स्व० ला० रामधन की अपूर्व कविता "चन्दै दी चान्दनी चन्नै कन्ने !" की है।

डोगरी के नये-पुराने कवियों के विषय में जागी हुई इसी उत्सुक जिज्ञासा के फलस्वरूप अखनूर के लाला रामधन की कीर्ति तो सुनी थी परन्तु उनकी कविता का कोई भी नमूना सुनने-पढ़ने को नहीं मिला। उनका एक आध पद पञ्जाबी भाषा में लिखा हुआ सुना था परन्तु सन्तोष नहीं हुआ। मैं तो डोगरी को गौरवान्वित करने वाली साधना की झलक पाना चाहता था। किसी ने कहा कि कटड़ा के एक मिस्तरी हैं उनको रामधन की कविताएं स्मरण हैं। उनको ढूंडने के लिए मैंने कटड़ा-ऊधमपुर के चक्कर लगाए। दो डेढ़ महीने के बाद वे मुझे जम्मू में ही मिल गये। यह एक कविता उन्होंने दी। मेरी दौड़-धूप सफल हो गई। अब मेरे पास डोगरी भाषा के तीन रत्न थे, तीनों अपूर्व और अलौकिक।

हरदत्त शास्त्री जी से पहले डोगरी भाषा के साहित्य कोष में लोक गीतों से भिन्न इन तीन कविताओं के सिवाय और क्या २ था, इसकी जानकारी दुर्लभ सी है। हरदत्त जी ही यथार्थ में डोगरी के पहले कवि हैं, जिनकी अधिकांश रचनाएं उनके स्वर्गवासी हो जाने पर भी हमें उपलब्ध हैं।

इसी लिए इस संकलन में हरदत्त जी की कविताएं ही अधिक हैं। श्री दत्त, मूलतः ब्रज भाषा के कवि थे। मैंने यहां उनकी ब्रज भाषा की कविता के दो चार नमूने भी दिए हैं। इसी तरह रामधन, डोगरी के साथ २ पञ्जावी तथा ब्रज में भी लिखते थे। उनके ब्रज भाषा के कुछ पद जो मुझे मिल सके हैं वे मैंने उनकी भूमिका में दिए हैं। डुग्गर के कवि-साधकों की काव्य साधना के इन संकलनों के बारे में आपकी सम्मति और सुझाव हमें कृतज्ञ करेंगे।

हवेली बेगम, जम्मू

बसन्त पंचमी 1959

—राम नाथ शास्त्री

कवि दत्तु

(अर्जुन प्रतिज्ञा)

नाग पुरेस, जलेस, धनेस, सुरेस जो आइ सहाइ करेगो,
यद्यपि किन्नर यक्ष पिशाच सुगंध्रप पन्नग ओघ अरेगो,
जो ये दुरें धरनी धरनी तल, व्योमनि जाइ उ पाइ धरेगो,
तद्यपि काल्ह हमारोइ बान जयद्रथ राइ के प्राण हरेगो ।।

—वीर विलास

[चाहे शेष, वरुण, कुवेर अथवा इन्द्र भी आ कर सहायता करें, चाहे किन्नर, यक्ष पिशाच गन्धर्व तथा नागों के समूह आ कर उसकी रक्षा करें, चाहे वह धरती के तल में छिप जाए अथवा व्योम (आकाश) में जा कर कदम रखे, फिर भी कल हमारा बाण जयद्रथ के प्राणों का अवश्य हरण करेगा ।]

देवी दित्ता (दत्तु)

कवि दत्तु का जन्म ग्राज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व तहसील बसोहली के भड्डु नामक कस्बे में हुग्रा जो उस समय एक छोटे से राज्य की राजधानी था। भडवाल वंश का राजा पृथीपाल उस समय वहां राज्य करता था। उस समय जम्मू में डोगरा इतिहास के प्रसिद्ध वीर नीतिज्ञ राजा रणजीत देव का शासन था। इनका राज्य काल संवत् १७८२ वि० (ई० १७२५) से वि० १८३७ (ई० १७८०) तक है। उस समय बसोहली का राज्य भी बड़े गौरव में था। यही समय था जिसे वहां की चित्रकला का सुवर्ण काल माना जाता है। बिलावर का इलाका बसोहली के राज्य में था। बसोहली की राजगद्दी पर दत्तु के समय ग्रमृतपाल नामक गुणी तथा गुणज्ञ राजा था जिसने जम्मू के श्री रणजीत देव की लड़की ब्याही थी। दत्तु के जीवन प्रसंग में इन राजाग्रों के ग्रतिरिक्त जम्मू के राजकुमार ब्रजराज देव का उल्लेख भी ग्रावश्यक है।

ब्रजराज ग्रौर भड्डु नरेश पृथीपाल दोनों गहरे मित्र थे। सम्भवतः पृथीपाल के द्वारा ही दत्तु कवि का जम्मू के राजघराने से परिचय हुग्रा। यह परिचय प्रासङ्गिक प्रशंसा से प्रारम्भ हुग्रा होगा ग्रौर इसका परिणाम यह हुग्रा कि कवि दत्तु का साहित्यिक-जीवन भड्डु-बसोहली की ग्रपेक्षा जम्मू से ग्रधिक जुड़ा रहा। वे २८ वर्ष तक जम्मू के राजघराने में राजकवि के पद पर ग्रासीन रहे।

दत्तु ने जितनी साहित्य-साधना की है, उस में "वीर विलास" नामक वीर काव्य का स्थान सर्वोपरि है। यह काव्य-ग्रन्थ महाभारत के "द्रोण पर्व" का ब्रज-भाषा में स्वतन्त्र पद्य-अनुवाद है। इस काव्य को लिखने की प्रेरणा कवि को जम्मू के राजकुमार ब्रजराज देव तथा भड्डु नरेश पृथीपाल के अनुरोध पर हुई। वीर विलास के प्रारम्भ में कवि ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है :—

भड्डु देश नरेश है, पृथीपाल अभिधान ।
ब्रजवासी दासी भई, जाकी मत जुत ज्ञान ।।

लाज दया गुण रूप निधाना। राखत गुरु लोकन को आना ।।
राजनीति उत्तम अति राखै। कटुक वचन कबहुं नहिं भाखै ।।

चिरंजीत रणजीत नृप, जम्बू नगर नरेश ।
जिन गोपाल प्रसाद तैं, जीत लियो सब देश ।।

ज्यों शिव को गनराज, ताको सुत ब्रजराज दे ।
सूर बड़ो युवराज, चिरजीवो गुनगन भरयो ।।

भई सरस ब्रजराज सों, पृथीपाल की प्रीत ।
गोसट वेद-पुरान की, करत सुनत नृप-नीत ।।

कह्यो मधुर तिन दुहुन मिली, वचन पुरोहित पास ।
द्रोन पर्ब भाषा करहु, ग्रन्थ सु 'वीर विलास' ।।

ताकी सासन पाई कै, रच्यो द्रोन संग्राम ।
श्री भडवाल पुण्डीर को पुरोहित दत्तु नाम ।।

वीर विलास में कवि दत्तु की अपनी लेखनी से लिखे ये पद कवि की तिथि-स्थिति आदि पर समुचित प्रकाश डालने के कारण बड़े ही महत्वपूर्ण हैं इसी लिये कविता-भाग में इन्हें दोबारा अर्थ सहित प्रस्तुत किया गया है।

'वीर विलास' के इलावा कवि ने जो दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा वह है 'ब्रजराज पञ्चासिका' जिसमें जम्मू के राजकुमार ब्रजराज की कांगड़ा के राजा घुमण्ड चन्द कटोच के विरुद्ध आक्रमण और विजय का आंखों देखा विवरण

है। इस युद्ध-यात्रा में कवि दत्तु भी अपने मित्र राजकुभार ब्रजराज के साथ गया था।

ब्रजराज का विवाह चम्बे के राजा रायसिंह की राजकुमारी से हुआ था। ब्रजराज पञ्चासिका लाहौर के ओरियण्टल कालेज की मैगज़ीन में १९३० जनवरी को प्रकाशित हुई थी।

दत्तु कवि द्वारा लिखे गये अन्य ग्रन्थ ये हैं :—

१ **बारा माह** (ब्रज-भाषा में ऋतु वर्णन)

२ **दत्त संग्रह** (कवि की फुटकर रचनाओं का संग्रह)

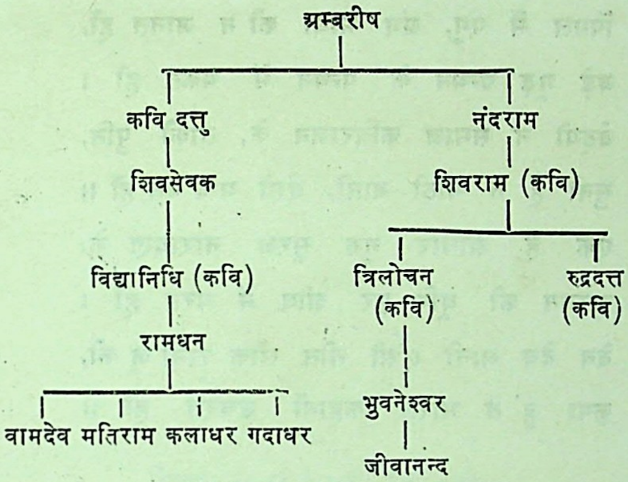
३ **भूप वियोग** (बलावर के राजा भूपति की मृत्यु पर)

४ **अमृत वियोग** (बसोहली के अमृतपाल की मृत्यु पर)

५ **कमल नेत्र** (वह प्रसिद्ध स्तोत्र जो उत्तरी भारत में सभी जगह लोकप्रिय हुआ)

कवि की इन रचनाओं का पता एक पत्र से लगा जो उन के प्रपौत्र पं० गदाधर (भल्लड़ ग्राम निवासी) ने जम्मू के मनीषी विद्वान् श्री चन्द्र जी को लिखा था। इन पुस्तकों में 'वीर विलास' का सम्पादन-प्रकाशन श्री गौरी शंकर जी ने किया था जब वे लाहौर गवर्नमेण्ट कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। विभाजन हो जाने से छपी हुई किताब लाहौर में ही रह गई। उसकी कुछ एक प्रतियां ही अब उपलब्ध हैं। वीर विलास की भूमिका में श्री गौरी शंकर जी ने दत्तु सम्बन्धी विस्तृत जानकारी दी है। मैंने दत्तु का यह जीवन-परिचय उसी के आधार पर लिखा है। इसके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

दत्तु का बचपन—कवि दत्तु के वंशज दो शाखाओं में विभक्त हो कर आजकल ज़िला कठुआ के भल्लड़ ग्राम में तथा सुकराला भगवती के पवित्र स्थान पर रहते हैं। कवि के पिता का नाम अम्बरीष था। इनका वंशवृक्ष इस प्रकार दिया गया है :—



अम्बरीष गौढ़ ब्राह्मण थे और भड्डु में रहते थे। घर में गरीबी थी। मिथिला प्रदेश से आए हुए एक ख्यातनामा विद्वान् सूर्यनारायण भगवद् भजन के लिए सुकराला में रहते थे। अम्बरीष दत्तु को उनकी सेवा में ले गए। दत्तु बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उनकी सेवा करने लगा और विध्याध्ययन भी। कहते हैं दत्तु उस समय बड़ा ही मन्द बुद्धि था इस लिए गरु चरणों में रह कर भी वह कुछ सीख न पाया।

अन्त में गुरु सूर्य नारायण के स्वदेश को वापिस चलने का समय आ गया। दत्तु उनके साथ रह कर उनसे इतना अनुरक्त हो गया था कि अब उनसे अलग होना उसे सह्य नहीं था। इसलिए उनके प्रस्थान करने पर वह भी उन के साथ २ चल पड़ा। इस स्नेह को देख कर गुरु सूर्यनारायण प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी जिह्वा पर बीजमन्त्र लिख कर तथा एक श्री यन्त्र दे कर कहा कि मन्दिर में इसकी स्थापना करके आराधना करना तुम्हारा कल्याण होगा।

गुरु कृपा से दत्तु को दिव्य-दृष्टि मिल गई। उसकी जिह्वा पर सरस्वती आ विराजी। इसी लिए कवि ने प्रायः अपने सभी ग्रंथों में गुरु महिमा का बड़ी विनय से उल्लेख किया है। वीर विलास के प्रारम्भ में वे लिखते हैं :—

पिंगल मैं पंगु, अंग भाषा कौ न जानत हौं,
बड़े गूढ़ ग्रन्थन के पन्थन में थकत हौं ।
बैठ्यो न समाज कविराजन के, ताकी पुनि,
सुनी है न मीठो बानी, ऐसो मन्द मत हौं ।।
एक हैं आधार गुरु सूरज नारायण के,
चरनन की धूरि पूर शीष में धरत हौं ।
देव देव मानी ऐसी तीन लोक रानी जू की,
कृपा हुं ते भारत कहानी उचरत हौं ।।

'ब्रजराज पञ्चासिका में लिखा है :—

पूजौं श्री गुरु देव, सकल देव मूरति विमल ।
जा प्रसाद कछु भेव, पायो दत्त कवित्त को ।।

कवि दत्तु तथा उनके वंश में होने वाले अन्य कवियों के कारण सुकराला भगवती का क्षेत्र ही कवि-क्षेत्र कहलाने लगा ।

दत्तु कवि के प्रपौत्र त्रिलोचन कवि ने संवत् १६१६ में स्व० महाराजा रणवीर सिंह के कहने पर महाभारत के शान्ति पर्व का "नीति विनोद" नाम से सुन्दर अनुवाद किया । दत्तु का पौत्र विद्यानिधि जल्ला पण्डित का समकालीन और काव्यकला में निष्णात था । इन्होंने महाभारत के कर्ण पर्व का 'वीरविनोद' नाम से पद्यानुवाद किया । दत्तु के प्रपौत्र रुद्रदत्त का भी जम्मू के महाराजा रणवीर सिंह के नाम लिखा हुआ एक डोगरी पद्य मिला है । ऐसा था कवि दत्तु और उसका वह नमस्य अभिनन्दनीय वंश !

सिक्ख दियां मिकी देवी दित्ता !

किल्लिआ वत्तना छुड़ी दित्ता,
इब्बै साथै कन्ने भरी ल्यान्नियां पानी ।

बुरा बो लोक इस गंगथा दा,
अन दोसिआ गी दोस दिन्दा ऐं जानी ।

कियां कुसै कन्ने हस्सना-बोलना,
कियां कुसै कन्ने गल्ल गलानी ?

सिक्ख दियां मिकी देवी दित्ता !
हुन सस्स-ननाण असें कियां समझानी ?

आठ पंक्तियों का यह लघु पद्य कवित्व की सूक्ष्म मार्मिकता का अपूर्व उदाहरण है। इसमें कवि ने नई ब्याहता वहू के उल्लास भरे हृदय पर लगे क्रूर बन्धनों का चित्र खींचा है। इस एक पद्य को डोगरी काव्य-परम्परा का एक बहुमूल्य पदचिह्न माना जाता है। नीरस सास और ईर्ष्यालु ननदों की कटूक्तियों से घायल वह कोमल अनुरागमयी वहू कवि से आत्म-निवेदन करती है :–

ऐ देवी दित्ता ! मुझे समझाओ !

ऐ कवि ! अब मैंने (पनघट पर) अकेले आना-जाना छोड़ दिया है। दूसरों के साथ जा कर ही पानी भर लाती हूँ। कितने बुरे लोग हैं इस 'गंगथ' (जिला कांगड़ा) के जो बे-दोषों पर भी दोष लगा देते हैं।

तुम ही बतलाओ कवि ! भला ऐसे में कोई किसी से हंस कर बात भी कैसे करे ? कैसे किसी से दो बातें भी कह सके ?

ऐ देवी दित्ता ! अब तुम ही मुझे सीख दो कि मैं अपनी सास और ननदों को मनाने के लिये क्या जतन करूं ?

(दत्तु की व्रज-भाषा कविता के कुछ उदाहरण)

गुरु-महिमा

चरण कमल गुरुदेव के, विमल ज्ञान की खान,
निसि दिन 'दत्त' हिये[1] बसैं, करत दुरित[2] की हान।
तिहिं[3] प्रसाद कविता करौं, अपनो मत अनुसार,
शब्द अर्थ चूकै[4] तहां, कोविद[5] लेहु सम्हार ॥

—वीर विलास

वीर विलास की रचना

भड्डु देश नरेश है, पृथीपाल अभिधान[6],
ब्रजवासी[7] दासी भई, जाकी मत जुत ज्ञान।

(दोहा)

लाज, दया, गुन-रूप-निधाना, राखत गुरु लोकन की आना[8]।
राजनीति उत्तम अति राखै[9], कटुक बचन कबहुं नहिं भाखै ॥

(चौपाई)

चिरंजीत रणजीत नृप, जम्बू नगर नरेश।
जिन गोपाल प्रसाद तैं, जीत लियो सब देश ॥

(दोहा)

ज्यों शिव को गन राज, ताको सुत ब्रजराज दे।
सूर बड़ो युवराज, चिरजीवो गुण गण भरयो ॥

(सोरठा)

भई सरस ब्रजराज सों, पृथीपाल की प्रीति।
गोसट वेद पुरान की, करत सुनत नृप-नीति ॥

(दोहा)

कह्यो मधुर तिन दुहुन मिली, बचन पुरोहित पास।
द्रोन पर्व भाषा करहु, ग्रन्थ सु बीर विलास ॥
ताकी सासन[10] पाइ कै, रच्यो द्रोण संग्राम।
श्री भडवाल पुण्ढीर को, पुरोहित दत्तू नाम ॥

—वीर विलास

---

[1]हृदय में। [2]पापों का विनाश करते हैं। [3]उन्हीं की कृपा से। [4]ठीक न उतरे। [5]विद्वान् (गुणी)। [6]नाम वाला। [7]जिसकी विवेकयुक्त मति व्रजवासी (नन्द नन्दन) की दासी हो गई है। [8]मान। [9]रखता है। [10]आज्ञा (फरमाइश)।

गुरु-महिमा

गुरु देव के चरण कमल जो निर्मल ज्ञान की खान हैं,
दत्तु कवि के हृदय में रहते हैं तथा पापों का विनाश करते हैं।

उन्हीं की कृपा से मैं अपनी सामर्थ्यानुसार कविता करता हूं, जहां
कहीं शब्द या अर्थ में चूक रह जाए वहां विद्वान् लोग स्वयं सुधार कर लें।

वीर विलास की रचना

पृथीपाल नामधारी भड्डु देश के राजा हैं,
जिन की ज्ञान युक्त मति ब्रजवासी (कृष्ण) की दासी है।

लज्जा, दया आदि गुणों तथा अनुपम रूप का आगार,
मान्यजनों का सम्मान करने वाला, राजनीति में प्रवीण
तथा जिसके मुंह से कड़वे वचन कभी नहीं निकलते,
ऐसा है जम्मू राज्य का अधिपति श्री रणजीत देव;
जिन्होंने, गोपाल की कृपा से, आस-पास का सारा प्रदेश जीत लिया है।
जैसे शंकर के गणराज (गणेश) हुए इसी तरह उनका लड़का ब्रजराज देव है।
युवराज बड़ा ही वीर तथा गुणी है। ईश्वर उसे दीर्घायु करे।
इस ब्रजराज से (भड्डु के) राजा पृथीपाल की गहरी मित्रता है,
ये दोनों मिल कर गोष्ठियों (बैठकों) में वेद-पुराण तथा राजनीति की
चर्चा करते हैं। इन दोनों ने मिल कर अपने पुरोहित को (मुझे)
कहा कि (महाभारत के) द्रोण पर्व को वीर-विलास नाम से भाषा में लिखो।
उनका यह आदेश पा कर भडवाल वंश के दत्तु नामी पुरोहित (मैं) ने,
द्रोण युद्ध सम्बन्धी यह भाषा-काव्य रचा है।

वीर बिलास के कुछ अंश !

वीर विलास के आरम्भ में द्रोणाभिषेक से पहले कवि ने भीष्म पितामह के घायल होने पर कौरव दल की दशा का जो वर्णन किया है, उसकी छटा देखिये :-

जैसे दुजराज[1] बिन राजत न रैन[2] जैसे
बिन भरतार[3] वर नार-दुति[4] फीकी है ।
आपगा[5] विहीन आप[6] सोहत न जैसे, पांच[7]-
वदन विहीन जैसे कंदरा[8] गिरी की है ।।
हने कालसारहू[9] के वीथि[10] ज्यों कुरंगन की,
देषियत[11] वाहिनी[12] ज्यों बांधी तब लीकी[13] है ।
पांडुसुत[14] ग्रसी आई, तैसेई[15] निहारी नृप !
भीषम विहूनि[16] फौज लागत न नीकी है ।।

—वीर विलास

जैसे चान्द के विना रात शोभा नहीं पाती, जैसे स्वामी के बिना पतिव्रता नारी की कान्ति फीकी हो जाती है । जैसे जल के विना नदी सुन्दरता को खो देती है, जैसे शेर के बिना पर्वत की गुफा सूनी लगती है, जैसे कृष्ण सार (बारह सींगे) के मारे जाने पर मृग-समूह अनाथ दिखाई देता है, जैसे कोई सेना जादू की रेखाओं में ग्रस्त हो विवश दीखती है, हे राजन ! अर्जुन के आक्रमण से दबी हुई आपकी सेना की भी, भीष्म के न रहने से, आज वैसी ही दशा दिखाई दे रही है ।

---

[1]चन्द्र । [2]रात्रि । [3]भर्ता (स्वामी) । [4]पतिव्रता नारी की शोभा । [5]नदी । [6]जल । [7]मृगेन्द्र (सिंह) । [8]गुफा । [9]कृष्णसार (बारह सींगा) । [10]मृगों की कतार । [11]दिखाई देती है । [12]सेना । [13]लकीर में बंधी हुई (जादू ग्रस्त सी)। [14]अर्जुन से आक्रान्त । [15]वैसे ही । [16]रहित ।

(युद्ध-भूमि का वर्णन देखिये)

भीरुन कौं भयदायक है, अरु सूरज को अति ही सुषदाई ।
सायक[17] वारि तरंग, तुरंग मतंगज नक्रनि[18] के गन छाई ।।
मीन भए कर[19] ढाल सुकच्छप, भीर मृदंग सरौथ सहाई ।
यौं विध सोणित[20] की सरिता, यम के पुर को द्विजराज बहाई ।।

—वीर विलास

जो कायरों के मन में भय पैदा करती है, परन्तु वीरों को सुख देती है, लहराते हुए बाण जिसमें जल की लहरों जैसे लगते हैं तथा हाथी घोड़े मगर-मच्छों के समूह जैसे प्रतीत होते हैं; योधाओं के कटे हुए हाथ मच्छलियों के समान तथा उनकी ढालें कच्छपों के सदृश दिखाई देती हैं, भेरियों और मृदंगों की आवाज़ जिसके कलकल की ध्वनि प्रतीत होती है ऐसी यह यमपुर को जाने वाली रक्त की नदी द्विजराज (द्रोणाचार्य) ने बहाई है ।

[17]तीर । [18]मगर मच्छ । [19]हाथ । [20]लहू की नदी ।

कौन २ बात किस किस के साथ बुरी लगती है, इसी भाव को कवि ने अपने इस फुटकर पद्य में दिखाया है। इसमें डोगरी शब्दों की छटा भी देखिये :–

है हंकार कलंक गुनीन,
पहाड़ के पंथ कलंक है घोड़ा।
सूर[1] को आप[2]–सराहि कलंक,
जु नीर के साथ कलंक है पोरा[3]।
धीर के साथ है मूढ़ कलंकरु[4],
साध के साथ कलंक है चोरा।
'दत्तहि' भात के साथ मखीर[5] अरु,
खीर के साथ कलंक भठोरा[6]॥

गुणी लोगों के लिये अहंकार कलंक है, तथा पहाड़ी सफर में घोड़ा कलंक [कष्टप्रद] है। वीर की आत्म-प्रशंसा बुरी है, और जल के साथ जल-कृमियों का होना बुरा है। धैर्य्य वाले के साथ मूर्ख पुरुष कलंक है, वैसे ही साधु पुरुष के साथ चोर की संगति बुरी है। दत्तु कवि कहते हैं, भात के साथ मखीर [शहद] खाना बुरा है और खीर [दूध भात] के साथ खमीर वाली रोटी खाना बुरा है।

---

[1]वीर पुरुष को। [2]आत्म-प्रशंसा। [3]जल कृमि। [4]कलंक अरु (और)। [5]शहद। [6]खमीर वाली तवे पर पकी रोटी।

राजकुमार ब्रजराज देव ने एक बार एक स्त्री को सती होते देखा। उसके माथे पर लाल टीका था। दत्त से उन्होंने पूछा—कवि! क्या आपने कभी विधवा स्त्री के माथे पर लाल टीका देखा है? कवि दत्त ने उत्तर में तत्काल यह पद कहा :—

प्रीतम साथ चली जरनै[7] को,
जु हार-सिंगार लगाई कै नीको[8]।
छोड़ि दिए धन, धान्य, कुटुम्ब
जु प्यारे बिना सब लागत फीको।
हेरि[9] रहे कर जोरि सबै मोहि,
लागति[10] नाहिं हटयो हठ नीको[11]॥
'दत्त' लष्यो[12] पुरमण्डल मैं,
विधवा के ललाट सुहाग को टीको॥

सोलह शृंगार करके, वह सुन्दर रमणी अपने प्रियतम के साथ चिता पर चढ़ने के लिए चली। अपने घर के धन-धान्य तथा वन्धु-बान्धव सभी को त्याग कर वह [मृत्यु की गोद में बैठने] जा रही थी, क्योंकि अपने स्वामी के विना उसे ये सभी नीरस-फीके लगने लगे थे। सभी लोग हाथ जोड़ कर चारों ओर घेरा डाल कर यह दृश्य देख रहे थे। उनका इस काम से उसे रोकने का अनुरोध उस नारी को रोक न पाया। उसका हठ [प्रण] पक्का था। दत्त कहते हैं कि इस प्रकार पुरमण्डल के तीर्थ स्थान पर एक बार [पति के साथ चिता-आरोहन करने वाली] विधवा के माथे पर सुहाग का [लाल टीका] मैंने देखा था।

[7]जलने के लिए। [8]सुन्दर। [9]देख रहे हैं। [10]हरा नहीं जाता। [11]सुन्दर हठ (प्रण से)। [12]देखा।

दत्त ने ब्रज-भाषा में 'बारह माह' नाम से एक ऋतु वर्णात्मक काव्य-पुस्तिका लिखी है। उसमें से दो उदाहरण देखिए :—

बरसात

लागि रही झरिहि[1] चहुं ओर, जे घेरत पौन[2] महा सुखदाई।
ऊपर भौन विछौन कियो, अति सोभित चीरन[3] की रसनाई॥
कोकिल मोरहिं चातक दादुर[4] सोर करें, चपला[5] सुखदाई।
'दत्त' अनन्द भयो मन मैं, पिआ पास रहौ, बरषा ऋतु आई॥

बसन्त

आई बसन्त हसन्त[6], सखि, घर कन्त नहीं किसे[7] पाओं सन्देसा।
जा दिन ते बिछड़े पिय मनहर, ता दिन ते सुख सोयो न सेजा॥
स्याम विजोगन होइ गई, रंग[8] राज की सेज भई रंग[9] रेजा।
पिआ पिआरे को आनि मिलावहु, जु आई मिलै नहि मो[10]कहु ले जा॥

बरसात

चारों ओर झड़ी लगी हुई है, शीतल मन्द पवन के झोंके बड़े सुखदायक हैं। भवन की ऊपर की छत्त पर शय्या बिछी है, जिस पर बिछाये वस्त्रों की शोभा बड़ी ही सजीली है। कोयल, मयूर, चकवे और दादुर शोर कर रहे हैं; बिजली कौंध २ कर मन लुभा रही है, 'दत्त' कवि कहते हैं—ऐसे समय में नायिका ने हर्षोत्फुल्ल हो कर अपने स्वामी से कहा—वर्षा ऋतु लग गई है अब आप मुझे छोड़ कर विदेश नहीं जा सकेंगे!

बसन्त

ऐ सखि! बसन्त की ऋतु हंसती-मुस्कुराती आ गई है, मेरे स्वामी घर में नहीं हैं, कैसे उन्हे सन्देश भेजूं। जिस दिन से वह मेरे हृदयेश्वर मुझे छोड़ कर चले गये हैं, उसी दिन से मेरी नींद भी चुरा कर ले गए हैं। मैं अपने श्याम की वियोगिन हूं। स्वच्छ सुहानी शय्या भी मलिन हो उठी है। ऐ सखि! जैसे भी हो मेरे प्रियतम को ला कर मुझ से मिला दो। यदि वह न आ सकती हो तो मुझे उनके पास ले चल।

---

[1]झड़ी [वर्षा]। [2]पवन। [3]वस्त्र। [4]मेंढक। [5]बिजली। [6]हंसती हुई। [7]कैसे। [8]रंगों का राजा [श्वेत]। [9]मैले रंग की। [10]मुझ को।

कृष्ण भक्ति का एक फुटकर पद्य भी देखने योग्य है:—

तान परी जब कानन[11] में सुध भूल गई जु भई हूं अजानी[12] ।
भात में हिंगु-बसार[13] मिलावत, दाल में डार दियो भर पानी ।
लौन[14] परयो न कहूं कविदत्त, जु खीर में डारति दाड़िम[15] छानी ।।
नन्द कुमार ! करौं मनुहार[16], रसोई समय मुरली न बजानी ।

कृष्ण मुरली

जिस क्षण तुम्हारी मुरली के स्वर मेरे कानों में पड़े हैं उसी क्षण से मैं सुध-बुध भूल गई हूँ, बांवरी हो गई हूं । हींग और बसार (हल्दी) दाल में न डाल कर भात में डाल दिए, और दाल में भर कर पानी डाल दिया । भाजी में नमक डालना भूल गई और अनारदाना कूट-पीस कर खीर (दूध चावल का मीठा भोजन) में डाल दिया । ऐ नन्द कुमार ! मैं तुझ से हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि मेरे भोजन बनाने के समय तुम बांसुरी न बजाया करो ।

---

[11]कानों में । [12]आत्म-विस्मृत । [13]हल्दी । [14]लवण । [15]अनारदाना । [16]प्रार्थना ।

राजाओं का मित्र हो कर भी कवि दत्त लक्ष्मी की कृपा से दूर ही रहा। उसकी आर्थिक दशा का हाल उसी के शब्दों में सुनिए। शंकर ने अपना सभी कुछ दूसरों को बांट दिया, कुछ वस्तुएं स्वयं उन्हें छोड़ गईं। एक 'भीख' थी, सो वह कहां जाती ?

आधो सरीर दियो हरि[1] को,
हर आधो दियो गिरिराज की जाई[2]।
ज्यों-विधि[3] शंभु अभाव[4] भयो,
लखि देवनदी[5] उदधी[6] उठि धाई।
चन्द्र कला गई अम्बर[7] मांहि,
पाताल गयो पुनि पन्नग[8] राई।
ज्ञान प्रभूत गयो नृपहून को,
भीख रही, कविदत्त के आई॥

एक बार जसरोटे के राजा ने कवि दत्त से पूछा—"महाराज! आप कोई सुवर्ण-भूषण नही पहरते!" कवि ने उत्तर दिया—सोने के इन गहनों में अनेक दोष होते हैं इसलिए हम ने ऐसे गहने पहने हैं जो सदा दोष-मुक्त रहते हैं। वे गहने क्या हैं ? कवि के शब्दों में सुनिए :—

'सारसुत'[9] सारो ही हमारो कण्ठ भूषण,
अमर[10] तबीत गल रत्न ही जड़ायो है।
कंकण कुमार[11] कर पौञ्ची रघुबंस लसै,
मेघदूत अंगद[12] सों बाहु छवि छायो है।
कुण्डल किरात[13] माघ सोभत हमारे कान,
नैषद[14] मुकुट गुरु देव पहिरायो है।
कंचन के भूषण को दूषन अनेक लागें,
'दत्त' ऐसे भूषन को साज मन भायो है॥

---

[1]विष्णु को। [2]बेटी। [3]जिस तरह। [4]दरिद्रता। [5]गंगा। [6]सागर में। [7]आकाश। [8]सर्पराज [शेष]। [9]सारस्वत नामक व्याकरण। [10]अमर कोष। [11]कुमार सम्भव। [12]बाजुबन्ध। [13]भारवि कृत किरातार्जुनीयम् और माघ का शिशुपाल वध। [14]श्री हर्ष का नैषदीयम् [काव्य]।

श्री कमल नेत्र स्तोत्र

'कमल नेत्र' कवि दत्तु द्वारा लिखी हुई कृष्ण भगवान् की वह स्तुति है जो आज उत्तरी भारत में प्रायः सर्वत्र घरों में गाई जाती है। इस स्तोत्र के प्रारम्भ की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

ॐ श्री कमल नेत्र कटि पीताम्बर, अधर मुरली गिरधरम् ।
मुकुट कुण्डल कर लकुटिया, सांवरे राधेवरम् ।। १ ।।
कूल जमुना धेनु आगे, सकल गोपी मनहरम् ।
पीत वस्तर गरुड़ बाहन, चरण नित सुख सागरम् ।। २ ।।
करत केलि कलोल निसि दिन, कुञ्ज भवन उजागरम् ।
अचल अमल अडोल निश्चल, पुरुषोत्तमं अपरापरम् ।। ३ ।।
दीना नाथ दयाल गिरधर, कंस हिरणाकुश हरम् ।
गल फूल माला विशाल लोचन, अधिक सुन्दर केशवम् ।। ४ ।।
जल डूबते गज राख लीनो, लंका छेद्यो रावणम् ।
सप्तद्वीप नव खण्ड चौदह भुवन कीनो (रामजी) इक पलम् ।। ५ ।।
द्रौपदा की लाज राखी, कहां लौं मैं उपमा करम् ।
दीना नाथ दयाल पूर्ण, करुणा मय करुणा करम् ।। ६ ।।
कवि दत्त दास विलास निसि दिन, नाम जपत नित नागरम् ।
प्रथम गुरु जी के चरण बन्दौं, यस्य ज्ञान प्रकाशितम् ।। ७ ।।

—१८ पदों के स्तोत्र से

शिव राम

शिवराम कवि दत्तु के छोटे भाई (नन्द राम) के लड़के थे। इनका एक ब्रज मिश्रित डोगरी भाषा का पद्य यूं है:—

जैहो बरदाती, मनमाती रहै नित्त प्रति,
दया दरसाती, दुति कोटिन दिनेसं दी।
जिनें सेवी माई, पाई तिने सब रिद्ध-सिद्ध,
तिनें आवती बढ़ाई सनें देवते सुरेसै दी।
जित्थें जित्थें सौंरै कोई, होन्नी एं सहाई जाई,
जियां महाराजै सुनि कूक ही गजेसै दी।
करना कैं चिन्ता 'सिबरामा' तूं मनैं बिच,
कट्टग कलेस तेरे प्यारी ओ महेसै दीं।

हे वर दात्री, मैय्या! तेरी जय हो! तू सदा अपने में मोदभरी रहती है। करोड़ों दिनेशों [आदित्यों] का तेज़ तुम में है। तुम अपने शरणागतों पर सदा दया दरसाती हो। ऐ माता! जिन्होंने तेरी सेवा अपनाई उन्हीं को तूने ऋद्धि-सिद्धि का वरदान दे कर अमरपति सुरेन्द्र [इन्द्र] के समान मान का अधिकारी बना दिया। जहां कहीं भी कोई तुझे [सौंरे] स्मरण करे वहीं पहुँच कर तुम उसकी सहायक बनती हो जैसे विष्णु भगवान ने गजराज की पुकार सुनी थी। ऐ शिवराम! तू भला मन में चिन्ता क्यों करता है? महेश की प्रिया वह गौरी तेरे भी क्लेश काटेगी।

त्रिलोचन

दत्तु कवि के पौत्र त्रिलोचन ने महाभारत के शान्ति पर्व का अनुवाद 'नीति-विनोद' नाम से किया था, उसके प्रारम्भ का पद इस तरह है :—

पिंगल न जानौं, नहिं जानौ रसराज हूं को,
रसिक विहारी सों पियारी सौं टरत हौं ।
भाषा को न लेश न प्रवेश कविरायन में ।
चार अवगुन के फल सौं डरत हौं ।
एक जगदम्बा, गुरु सूरज नारायण के,
चरण-कंज धूर निज शीष पर धरत हौं ।
पाई कै निदेश श्री नरेश रणवीर जू की,
राजन के हेत राजनीति ग्रन्थ करत हौं ।

न तो मैं पिंगल (छन्द) शास्त्र जानता हूं, और न ही मुझे रसराज [शृंगार अथवा करुण रस] का रहस्य ज्ञात है । सहृदय मर्मज्ञों के सन्मुख कोमल नायिका के समान लज्जा अनुभव करता हूँ । न तो भाषा पर ही अधिकार है, और न काव्य-कुशल कवियों से सम्पर्क है, इन चारों अवगुणों [दुर्बलताओं] के परिणाम से आशंकित रहता हूँ। सहारा है तो एक जगदम्बा [सुकराला भगवती का] तथा कुल गुरु श्री सूर्य नारायण जी का, जिनके चरण कमलों की धूलि मैं अपने मस्तक पर चढ़ाता हूँ। [जम्मू के] महाराजा श्री रणवीर सिंह जी का आदेश पा कर राजाओं के लिए यह राजनीति का ग्रन्थ [नीति विनोद] लिखने लगा हूं ।

रुद्र दत्त

रुद्रदत्त दत्तु कवि के भाई (नन्द राम) के पौत्र और जम्मू के महाराजा श्री रणवीर सिंह के समकालीन थे। इनका एक डोगरी-पद्य प्राप्त हुआ है :—

आऊंदे न बपारी घोड़े आनदे कंधारी,
मुल्ल पान्दे सै ओ भारी, जन्दा कोई नइयों सक्खना।
केसर दुसाले मणि हार जरी कीमखाब,
मोतिन अमोल आपूं चली आउन्दे गक्खना।
× × × × ×
जम्मुआ दा राज राजा भूपति सुलक्खना।
× × × × ×
अपना बपारी जान त्रंगड़ माल रक्खना॥

ऐ देव ! आपके दरबार में (दूर-दूर से बड़े-बड़े) व्यापारी कन्धारी घोड़े ले कर आते हैं। उन की बड़ी बड़ी कीमतें पड़ती हैं, लेकिन आया हुआ कोई भी व्यापारी निराश हो कर नहीं लौटता। (इसी तरह आपके अधीनस्थ सामन्त) आपकी सेवा में केसर, दुशाले, मुक्ता-हार, ज़री, कीमखाब तथा भान्ति २ के हीरे-मोती उपहार लाते है।
× × × × ×
ऐ जम्मू के महाराज ! आप का प्रताप और गौरव धन्य है।
× × × × ×
(मेरे पास आपके दरबार में पेश करने योग्य उपहार तो नहीं है) फिर भी मुझे अपना ही कृपा पात्र जान कर मेरा यह गाढ़ा-मोटा सौदा स्वीकार करने का अनुग्रह करें।

वामदेव

वामदेव दत्तु के पौत्र विद्या निधि के पौत्र और स्व० महाराजा प्रताप सिंह के समकालीन थे। इन्होंने महाभारत के कर्ण पर्व का वीर-विनोद' नाम से पद्यानुवाद किया। इस पद्य में इन्होंने अपने समय की कचहरियों का चित्र खींचा है :—

दै हमैं अरजी जसरोटा की वजारत सौं,
तीन बरस गुजरे सरयो नहीं काम हैं।
दौर दौर थके हम जम्बू जसरोटा सों,
कागद अस्टाम लेते छीन लियो दाम हैं।
पूछत बन्धु अरु मित्र सब, भाई मेरो
देख्यो कौन न्याय तुम, निर्बल कौ राम हैं।
कहत कवि वाम देव सुनो श्री प्रताप सिंह,
दालत के हाकम ये करत कौन काम हैं ?

हमने जसरोटा (हीरानगर) की वज़ारत में एक अरज़ी दी थी। उसे दिए तीन वर्ष गुज़रने लगे हैं, लेकिन अभी तक हमारा काम नहीं हुआ। हम जम्मू से जसरोटा (और जसरोटा से जम्मू) आते जाते थक गए हैं, कागज़ और अष्टाम आदि खरीदने में ही गांठ का सारा धन खर्च हो गया। अब मित्र तथा बन्धु पूछते हैं—अरे भाई! कहो (अदालत में) तुम्हे कैसा न्याय मिला? अरे भाई—(इस धरती पर) निर्बल का न्याय तो राम का भरोसा-मात्र है। वामदेव कवि कहते हैं; ऐ महाराज श्री प्रताप सिंह जी सुनिये, भला आपकी अदालतों के ये हाकिम वहां (कुर्सियों पर) बैठे क्या काम करते हैं ?

पं० गंगा राम

इक्कै गल्ल सच्चै दी, सै लाड़िया गलाई दित्ती,
सबनें थों कच्चा लोको, कंडिया दा बस्सना !!

पं० गंगा राम

जन्म	मृत्यु
सं० १८३० विक्रमी	सं० १९१५ विक्रमी
सन् १७७७ ईस्वी	सन् १८५८ ईस्वी

पं० गंगा राम जी जम्मू-काश्मीर नरेश स्व० रणवीर सिंह जी के समकालीन थे। इनका जन्म जम्मू प्रान्त में तहसील साम्बा के एक गांव 'गढ़वाल' में हुआ था। इनके पिता श्री देवी दत्त जी अपने समय के बड़े मनीषी विद्वान् थे। इसी विद्वता और पाण्डित्य के कारण आप प्रदेश में तथा राज दरबार में भी अत्यन्त सम्मान पाते थे। विद्या की दिव्य आभा से प्रकाशित घर में उत्पन्न हो कर और अपने देश की रमणीय प्रकृति से मस्त-मुग्ध उनका शैशव बड़े ही सुख में बीता। १६ वर्ष की आयु तक गंगाराम घर पर ही अपने पूज्य पिता जी से विद्या-अध्ययन करते रहे।

किशोरावस्था में ही इनकी प्रतिभा देख कर इनके घर वाले चकित रह जाते। घर पर विद्या लाभ में कोई त्रुटि नहीं थी परन्तु गंगा राम जी का स्वतन्त्र मन घर के इस सीमित वातावरण में बन्द रह कर मुक्त गगन के लिए आकुल हो उठा। अन्त में एक दिन वे घर से भाग निकले। घूमते-फिरते डेरा बाबा नानक (पञ्जाब) में जा पहुँचे। वहां एक संस्कृत पाठशाला थी, यहां ये कुछ देर पढ़े परन्तु सन्तोष न हुआ। काशी-बनारस की कीर्ति सुन रखी थी, वहीं उन्हे खींच रही थी। वहां ये लगभग १२–१३ वर्ष तक न्याय-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र का अध्ययन करते रहे।

इसी समय में उनका कवि प्रबुद्ध हो रहा था। एक प्रबुद्ध विकसित वातावरण में रह कर, विद्या से आलोकित प्रसन्न मन ले कर श्री गंगा राम जी जब ३० वर्ष की अवस्था में स्वदेश लौटे तब तक उनकी कीर्ति वहां दूर २ तक फैल चुकी थी। इसी लिए घर पहुंचने के कुछ दिनों बाद ही इन्हें कांगड़ा के राजा ने सादर बुला कर इन्हें गुरु धारण किया और एक संस्कृत पाठशाला खोल कर इन्हें वहां प्रमुख अध्यापक लगा दिया। कुछ ससय के बाद मण्डी के राजा ने भी इनका सम्मान किया और इनसे गुरु-मन्त्र प्राप्त किया।

महाराजा रणवीर सिंह जैसे प्रबुद्ध साहित्य सेवी और गुणियों का आदर करने वाले शासक ने जब अपनी रियासत के एक ऐसे असाधारण विद्वान का रियासत के बाहर होने वाले सम्मान के समाचार सुने तो वह स्वयं उनके पास कांगड़े में पहुँचे और कांगड़े के राजा की अनुमति से इन्हें सादर अपनी राजधानी जम्मू ले आए। यहां महाराजा ने इनको संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने का काम सौंपा।

उन्होंने अनेक छोटे-मोटे अनुवाद और संकलन किए। उनकी सब से प्रसिद्ध रचना है 'रणवीर-प्रायश्चित' जो लगभग एक हज़ार पन्नों का विशाल ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ में अनेक प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ तथा अन्त में इन्होंने एक-एक स्वरचित संस्कृत का श्लोक दिया है। एक उदाहरण देखिए। अनुपातक प्रकरण के अन्त में उनका यह श्लोक है जिसमें गंगा-प्रवाह के रूप

में अपने ग्रन्थ का परिचय तथा अपने अभिभावक का अभिनन्दन किया है।

समुनीतस्तावद् गिरि-तट-भुवा गांग विदुषा,
ततोधः संस्थानै र्वर कवि-जनै-र्दृष्ट सुजवः।
गतः काश्यां पश्चात् तदनुविधया सिन्धु तटतः
प्रवाहो गंगाया नृपवर समाज्ञप्त इव यः॥

पहाड़ों की तराई के निवासी गंगा राम कवि ने जिसे शास्त्र रूपी कठिन पर्वत-शृङ्गों से उतारा है, तथा जिसके सुन्दर प्रवाह की प्रशंसा उनके आगे आने वाले वर-विद्वानों ने की है, जिसकी चर्चा काशी तथा उसके आगे सागर तट तक जा पहुंची है ऐसी धर्म-शास्त्र रूपी गंगा का यह प्रवाह श्रेष्ठ नृपति (भगीरथ तथा जम्मू नरेश) के आदेशानुसार वहता जा रहा है।

संस्कृत के साथ २ वे व्रज-भाषा में कवि प्रयोग करते थे। जैसे :--

कठिन प्रवन्ध सव देशन में प्रायश्चित,
पंडित प्रवीनन के चित्त मध्य धनी है।
पाप के प्रनाशन को चाहत हैं सब जन,
मन्द मति मानव से विधि नहीं बनी है।
गण-पत, गौरी-पत, देवन के देव-पत,
इनको धियाय प्रायश्चित भाष जनी है।
कवि गंग मन में विचार करे बार–बार,
महाराज जम्बू पत अच्छी बात गनी है।

इस प्रकार समकालीन राजाओं से प्रशंसित तथा समाहृत कवि गंगा राम को जो भी आर्थिक उपहार मिलते उनका अधिक भाग वे लोकोपकार तथा विद्या-प्रसार जैसे पुण्य कामों में खर्च कर देते। उन्होंने कई विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता दे कर पढ़ाया। कूप, तालाव, वापी और मार्ग बनवाने का भी उन्हें बड़ा शौक था। गढ़वाल गांव में उनका बनवाया हुआ एक कुआं और एक तालाव आज तक उस दान धर्म वीर मनस्वी का यशचिह्न है।

महाराज रणवीर सिंह जी के स्वर्गवास होने पर ये भी विरक्त हो कर काशी चले गए। वहां कुशा घाट पर एक पाठशाला खोल कर मरण पर्यन्त विद्यार्थियों को विद्या-दान करते रहे। वहीं पचासी वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।

इनके वंशजों से उनके इस स्वनामधन्य पूर्वज का कीर्ति-गान सुनते हुए मन में अनेक बार यह ख्याल आता था कि काश उस कवि की काव्य-साधना के नमूने भी उपलब्ध होते! परन्तु 'कंडिया दा वस्सना' के इलावा इस समय तक उनकी और कोई डोगरी रचना उपलब्ध नहीं हुई है।

'कंडी दा वस्सना' डोगरी कविता का एक विलक्षण उदाहरण है। इतनी विलक्षण रचना किसी नौसिखिये कवि का प्रयास नहीं हो सकती। अवश्य ही गंगा राम जी ने डोगरी में इतनी काव्य-साधना की होगी जिसके फलस्वरूप "कंडी दा वस्सना" जैसी कोमल, कलात्मक तथा मर्म-स्पर्शी कविता लिखी जा सकती है।

कंडिया दा बस्सना

डुग्गर के अन्तर्गत पंजाब के मैदानी इलाके और मध्य-पर्वत-शृंखला के बीच जो बंजर और शुष्क लम्बा पठार पड़ता है उसे 'कंडी' कहते हैं। इस प्रदेश में पानी की बहुत कमी है। कवि का जन्म स्थान भी इसी प्रदेश में है। इस कविता में इस भू-भाग के रहने वालों के जीवन की एक मार्मिक झलक है :—

बाजरे दी राखी करी, डंगर डराई करी,
चिड़ियां उड़ाई करी, कियां कियां कत्तना ?
क्रो[1] जाई पानी भरी, पत्थरें'च पैर भन्नी,
ढक्किया दा दुःख भैनें, कुसी जाई दस्सना ?
बच्छुएं बछेरटें गो, पानी पलेयाना रोज़,
अद्धी रातीं उठ्ठी करी, चक्किया गी घस्सना ?
इक्कै गल्ल सच्चै दी, सै लाड़िया गलाई दित्ती,
सबनें थों कच्चा लोको, कंडिया दा बस्सना !!

---

(१) क्रोश—(कोस—डेढ़ मील)

(खेतों में) बाजरे की रक्षा के लिए पशुओं को डरा कर और पक्षियों को उड़ा कर, भला कोई (चर्खा) कैसे कात सकता है ?[1] पानी लाने के लिए कोस भर दूर जाना; (रास्ते के पैने) पत्थरों की ठोकरों से पैरों को घायल करना, और फिर (ऊंची नीची) ढक्कियों का चढ़ना-उतरना ! बहन, ये दुःख कोई किसे जाकर सुनाए ? ढोर-डंगरों के छोटे-नन्हें बछड़ों को पानी पिलाना[2] और फिर रोज़ आधी रात को उठ कर चक्की में अनाज पीसना ! (कोई कहां तक गिने, कोई कहां तक सुनाए ! एक ही सच्ची बात है जो घर की बहू ने[3] कह दी है कि :—

ऐ लोगो कंडी के इस प्रदेश का निवास सब से बुरा है, सब से बुरा है !

(१) कंडी में खेत घरों के साथ २ ही होते हैं। घर के चबूतरे पर बैठ कर कंडी की नारी को ढोर-डंगर तथा पक्षिओं से अनाज की रक्षा भी करनी पड़ती है और चर्खा भी कातना पड़ता है। दोनों काम साथ २ करना सहज नहीं होता।

(२) कंडी में पानी की कमी होने पर भी नन्हें बछड़ों को तो घर में ही रख कर पानी पिलाना पड़ता है। वे इतने चंचल होते हैं कि सौ नाच नचाते हैं। वे क्या जानें कि उन्हें पिलाने के लिए यह ममता-मयी नारी कितनी दूर से पानी लाई है !

(३) बात कही तो छोटी बहू ने लेकिन थी तो बड़ी बहुओं के मन में भी ! वे कह न सकी होंगी। अथवा जवानी में उन्होंने भी कही होगी पर जवानी के ढल जाने पर कहां याद रहती है।

लाला राम धन

"दिक्खी लै रामधना ! प्रीतै दी रीतै गी,
लटकना कच्चिया तन्दै कन्ने !"

लाला राम धन

लाला राम धन स्व० महाराजा प्रताप सिंह के समय में, जम्मू प्रान्त के अखनूर नगर में रहते थे। वे जाति के सुनार थे लेकिन किसी ने उन्हें सुवर्णकार के रूप में काम करते नहीं देखा। इनके विषय में जानने के लिए 'श्री ब्रह्म-संकीर्तन' के रचयिता श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी से पूछताछ की। वे भी वहीं के रहने वाले हैं। स्वामी जी की आयु इस समय ६७-६८ वर्ष के लग-भग है।

उन्होंने बताया कि जब वे आठ-नौ वर्ष के थे तब अखनूर में रामधन की बड़ी मशहूरी थी। उनकी इस प्रसिद्धि का कारण था उनकी लोकप्रिय कविता और प्रभाव-पूर्ण व्यक्तित्व।

"आपको उनकी आकृति और पोशाक आदि के बारे में कुछ स्मरण होगा?" मैंने स्वामी जी से पूछा। स्वामी जी ने कहा,

" वे (ला० राम धन) अत्यन्त साफ-उजले वस्त्र पहन कर अपनी दुकान पर सफेद चादर के ऊपर बड़ी शान से बैठते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि वे विशुद्ध डोगरी पोशाक पहनते थे। जैसे पग्ग साफा, कमीज़ के ऊपर खासे का खुली बाहों वाला कुर्ता, तंग डोगरा पाजामा और कन्धों पर मलमल की मायावाली सफेद चादर। जूता उनका सदा तिल्लेदार होता था। उनका चेहरा बड़ा बारोब था। मुंह पर लाल २ दाढ़ी थी जिस पर वे शायद मेहन्दी लगाते थे। मूंछें बड़ी रोबीली और चेहरे को शोभा देने वाली थीं। दुकान पर बैठे हुए आप एक बड़े प्रधान व्यक्ति से लगते थे। हमें वे बड़े प्यार से बुलाकर पास बैठा लेते और बड़ी रोचक बातें सुनाते। उनके पास पांच-दस आदमी हमेशा बैठे रहते जिन्हें लाला जी अपनी कविताएं सुना २ कर हंसाते-रुलाते रहते।"

"उनका गुज़ारा कैसे चलता था?" मैंने पूछा!

"इसके बारे में मुझे कोई निश्चित जानकारी नहीं, क्योंकि मेरी उमर उस समय काफ़ी छोटी थी। हां इतना ज़रूर याद है कि उन दिनों 'रामधनी पतंग' बड़ी मशहूर थी। आठ आने में एक मिलती थी। उस समय आठ आने आजके तीन-चार रुपए के बराबर तो होंगे ही। लेकिन हम सुनते थे कि जम्मू तक लाला जी की बनाई हुई पतंगें जाती हैं। मैंने वैसे उन्हें पतंगें

बनाते भी नहीं देखा। जिस दुकान पर वे बैठते थे वहां अन्दर की तरफ़ शायद पतंगें लटकी रहती थीं।"

"उनके परिवार या वंश के बारे में आप को कुछ जानकारी है?' मैंने पूछा।

"कोई विशेष नहीं। शैशव के इसी परिचय के एक दो वर्ष बाद उनका देहान्त हो गया। कहते हैं कि उनके दो भतीजे थे। वे भी शायद निस्सन्तान ही मरे।"

"क्या उन्होंने सिर्फ डोगरी भाषा में ही कविता की थी?"

"डोगरी, पंजाबी और पूर्वी (ब्रज भाषा) तीनों ज़बानों में वे कविता करते थे। लेकिन दुर्भाग्य से उनकी कविताओं का वह रिकार्ड अब नष्ट हो गया है। मैंने उसके बारे में खोज-खबर की लेकिन कोई लाभ न हुआ।"

इसी तरह लाला रामधन के विषय में एक दो दूसरे बज़ुर्गों से जो जानकारी मिली वह भी ऐसी ही थी। उससे केवल उनके बारे में और जानने की जिज्ञासा बढ़ी। लेकिन आज से लगभग ६० वर्ष पहले दिवंगत होने वाले कवि के बारे में निश्चित जानकारी पाने का शायद आज कोई सुयोग नहीं रहा है।

स्वामी जी से ही पता चला कि अखनूर में एक रिटायर्ड गिरदावर हैं, श्री वरेयाम सिंह, उन्हें रामधन के कुछ पद कंठस्थ हैं। मैं उनसे वहां जा कर मिला। उनकी अवस्था भी ७० वर्ष के लगभग ही है। परन्तु वे भी लाला जी के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी न बतला सके। हां, उनसे लाला जी के दो-एक ब्रज भाषा के पद ज़रूर मिल गए। दर-असल कवि का सच्चा परिचय तो उसकी कविता में ही होता है। लेकिन मानव मन का स्वभाव है कि वह साधक के बारे में भी जहाँ तक हो सके जानना चाहता है।

मुझे खेद है कि डोगरी की उसी एक कविता के इलावा (जो मुझे कटड़े वाले मिस्तरी जी से मिली थी) लाला जी की और कोई डोगरी रचना नहीं मिली। उनके दो-एक अधूरे ब्रज भाषा के पद स्वामी ब्रह्मानन्द जी से भी मिले थे। इन चार पांच ब्रज पदों की रूप शैली देखिए। इनमें डोगरी की पुट भी देखने योग्य है:—

बसन्त की बहार आईं, शाखें गुलज़ार आईं,
बुलबुल मिल डार आईं, फूल फूल बोलें!

मूल—फूल, डाल-फूल, पातन के नाल फूल,
फूल-फूल कलि-कलि, सरसत मुख खोलें !

यहां 'डार' और 'नाल' शब्द क्रमशः डोगरी और पंजाबी के हैं। 'वसन्त' पर एक पद ठा० वरयाम सिंह जी से भी मिला। वह इस तरह है:—

आये तो बसन्त सखि, घर में नहिं कन्त सखी,
वो तो बे अन्त सखी, मोर मुकुट वारे जी !

फूल रही सरसों, कहीं जाय के हरसों,
क्यों लाई हैं बरसों ? श्याम सुन्दर कारे जी !

जिनके हैं कन्त पास, करती हैं सुख-विलास,
हौं बिन तुम उदास, प्राण पान हारे जी।

राम धन दासी की, सुनियो बृजवासी की,
दरस की प्यासी की, रहत क्यों हो न्यारे जी !!

अवश्य ही मौखिक परम्परा ने भी इन मूल पदों में भाषा सम्बन्धी हेरफेर किया होगा, जैसे 'कहीं जायके हरसों' 'प्राण पान हारे" सुनियो बृजवासी की' आदि। उन्होंने एक पद में (सूटे सुलफे) के व्यसनियों पर सुन्दर चोट की है :—

सूटे के शकैये पपैये हैं कई कई।
मुफ्तखोरे बहुते हैं चरसी कहलावते ॥
जहां जहां चिलम फूंकें, वहां वहां जाई ढुकें।
मौका से नहीं रुकें निजम साथ जावते ॥
चिलम हाथ आवे तो वो कैसे रह जावे।
चिलम बीच मैल सड़े, चित्त को जलावते ॥
रामधन हरे-हरे, इन से रहो परे-परे।
मरने से पहले ही ये नरक को हैं पावते ॥

शकैये-पपैये, जाई ढुकें आदि में स्थानीय बोली का प्रभाव स्पष्ट है। नशे पर एक और अधिक सुन्दर अर्द्ध-पद इस तरह है :—

मस्त कोई भंग में, चरस में, अफीम में हैं
कोई मस्त साहब की चरचा बखाने हैं।
रामधन जिसकी है हिये में जिसको लगन
वही राम उसको, राम उसी में समाने हैं ॥

कलियुग के बारे में राम धन का यह पद स्वामी जी से मिला :—

कलिजुग जब आयो — आ कदम जब टकायो,
सब कर्म-धर्म धायो — जा बैठ्यो पाताल में।

जोरन बेजोर हुए — औरन के और हुए,
साधन के चोर हुए — बहुते कलुकाल में।

घट बोल, घट तोल — लेते हैं गांठ खोल,
उमर घट, गुबर घट — फंसे मोह जाल में।

पापन को जोर बड़ा — पुन्न कमज़ोर बड़ा,
रामधन सोर बड़ा — जगत जञ्झाल में।।

ठा० वरेयाम सिंह जी ने पहाड़ी-जीवन सम्बन्धी उनका यह पद सुनाया :—

यह लोग जो पहाड़ी — सदा बसत हैं उजाड़ी,
हाथ परठी औ' कुहाड़ी — यही इनके हथ्यार हैं।

सीस धरें फटी टोपी — मैली पतली लंगोटी,
हाथ बीच रहे सोटी — पीठ धरत बहु भार हैं।

जब जब दुःख होते — ये हैं करमों को रोते,
अज्ञान में हैं सोते — नित पड़ती बगार हैं।

राम धन कहे सार — मत देओ दोस यार,
ऊंच नीच को व्योहार — होत कर्म अनुसार है।।

इन पदों को पढ़ने से स्पष्ट मालूम होता है कि रामधन सामायिक बातों को कविता में बांधने में बड़े चतुर थे। उनकी इन उक्तियों से स्पष्ट है कि वे सुधार वादी दृष्टिकोण रखते थे। दुःखियों के प्रति उनके मन में सहानुभूति थी। उनकी तबीयत में व्यंग्य तथा हास्य का अंश भी काफ़ी था। डोगरी की ये पंक्तिएं इस बात की गवाह हैं :—

चल भई भगता, गंगा न्हा,
तित्तलु बी चली ऐ, बिन्दलु बो चली ऐ,
कन्नें चली राम दित्ते दी मा!

चन्दै दी चान्दनी

दिक्खी लै राम धना ! प्रीतै दी रीतै गी,
लटकना कच्चिया तन्दै कन्ने !

हत्थें दियां दित्ती दियां कठन होई जन्दियां,
खोलनै पौन्दियां दन्दै कन्ने !

ग्रौं तेरीं, तूं मेरा होई गेंग्रा,
सुखै—दुखै चंगे—मन्दै कन्ने !

दणां भर कुसैगी मन्देयां निं बोलना,
चन्दै दी चान्दनी चन्दै कन्ने !!

चान्द की चान्दनी चान्द के साथ !

स्व० लाला राम धन की यह कविता असल में चार सुन्दर लघु कविताओं की मनोरम माला है। इसके चारों पद्यों में चार स्वतन्त्र भाव प्रगट हुए हैं जिनमें कवि ने अन्तिम पंक्ति की तुक को अपनी अमर टीप की पंक्ति की तुक से मिला कर जोड़ दिया है। उस अमर पंक्ति से जुड़ जाने के कारण ही सम्भवतः ये तीन पद्य लोगों की स्मृति में अंकित हो गए अन्यथा इनका भी परिणाम वही होता जो लाला जी की बाकी कविताओं का हुआ है।

ऐ रामधन ! आकर देख लो कि यह प्यांर-प्रीति की रीति कैसी होती है ! प्राणों को कच्चे सूत की तार पर लटकना पड़ता है।

(इसे ही तो कहते हैं कि कई वार) हाथ से लगी हुई गांठ इतनी कठिन हो जाती है कि दान्तों से खोलना पड़तीं है। (लेकिन अब यह सोच कैसी ? यह चिन्ता क्यों ?) अब तो हम दोनों सुख-दुःख तथा भलाई-बुराई, हर दशा में, एक दूसरे के हो चुके हैं। ऐ रामधन ! हमें एक क्षण के लिए भी किसी के विरुद्ध कुछ नहीं कहना, किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए ! चान्द को देखो, धरती पर फैली हुई यह चान्दनी उसी की तो है !

साड़ा ते कम्म था कत्तना पिञना,
कन्ने हा तुम्बने—तम्बने दा,

त्रुट्टी गेइयां ग्रौं भार घा चुक्किये,
पत्तरा तूतें ते धम्मने दा !

कोदे बस पाइयां माड़ेया ठौगरा,
दस्सो हां राह जी थम्मने दा !

इस्सै दे कन्ने हुन जीना ते मरना,
मरना ते जीना इस्सै धन्धै कन्ने !!

दग्गा भर कुसै गी मन्देयां नि बोलना,
चन्दै दी चान्दनी चन्दै कन्ने !!

इस पद्य में कवि ने एक ऐसी नारी के मन की खीज का चित्र उतारा है जिसे ससुराल में उसकी आशाओं के विपरीत कठोर जीवन का भार उठाना पड़ा है ! खीज की पराकाष्ठा है—"कोदे बस पाइयां माड़ेया ठौगरा !" लेकिन अन्त में पति के अनुराग का अभिनन्दन और उस जीवन से समझौता—डुग्गर के जीवन की गौरव-पूर्ण झलक लिए है ।

हमारा काम तो कातना, पींजना और रुई को बनौलों से अलग करके साफ करना-खोलना था । (लेकिन क्या पता था कि भाग्य में कुछ और लिखा है) मैं तूत और धम्मन (नामक वृक्षों) के पत्तों के ये बोझल गट्ठर उठा २ कर जैसे टूट सी गई हूँ !

ऐ मेरे परमेश्वर ! मुझे यह तुमने किसके वश में डाल दिया है ? अब तुम ही मुझे धीरज धारण करने का रास्ता दिखाओ !

लेकिन अब चारा ही क्या है ? अब तो इसी (निर्मम) के साथ जीना-मरना होगा ? इसी कठोर परिश्रम से मृत्यु तक समझोता करके चलना होगा ।

हम किसी दूसरे की निन्दा क्यों करें ? चान्द भी तो है जिसकी चान्दनी (विश्व भर में एक समान फैल जाती है। काण्टों का कण्टीला पन उन्हीं में रह जाता है और वह हमेशा) अपने चान्द के साथ मुस्कुराती रहती है ।

दिक्खी लै जागता ! गबरुआ ! आपूं तूं,
लाड़िया गल्लां गलान्दिया गी !

होर अऊं जागता ! ब्याह रचान्नियां !
फूकी दे एदी परान्दिया गी !

घरै दे कम्में गी हत्थ नि लान्दी ऐ,
लाई बौन्दी हत्थ चान्दिया गी !!

भज्जियां, त्रुट्टियां गल्लां शतून्नियां,
बरा होई गेया सुनान्दिया गी !!

घरै गी आमां लड़ाई पेई जन्दी ऐ,
गल बी सुक्की गेया खंगै कन्ने !

दण्ा भर कुसैगी मन्देयां नि बोलना,
चन्दै दी चान्दनी चन्दै कन्ने !!

इस तीसरे पद्य में एक छोटे से घरेलु झगड़े की तस्वीर देखते बनती है। बूढ़ी सास, जैसा अक्सर होता है, अपनी जवान बहू के रुचि रुझान देख कर बौखला गई है। बहू का सजना-संवरना उसे एक आंख नहीं भाता और क्रोध में बेकाबू होकर वह अपने बेटे से शिकायत ही नहीं करती, उसका नया विवाह करवा देने का लालच देकर उसे बहू को मारने-पीटने के लिए उकसाती है।

अरे लड़के ! (तू बड़ा बहादुर बना फिरता है !) ज़रा अपनी इस बहू को बातें बनाते हुए तो देख ! बेटा ! मैं तेरा दूसरा ब्याह करवाती हूँ । तू इसके इस (चमकदार, लहराते) परान्दे को खींच कर आग में फैंक दे । घर के किसी काम में यह कभी हाथ नहीं लगाती । (लगाए भी कैसे ?) चान्दी के गहनों से जो इन्हें यह भर लेती है। साल भर हुआ है इसे इस घर में आए हुए और साल भर से मैं इसकी यह कड़वी, विस भरी बातें सुनती आ रही हूँ। बाहिर से जब भी घर लौटती हूँ तो हर बार झगड़ा खड़ा हो जाता है। खांस २ कर मेरा तो गला भी सूखने लगा है !

हमें किसी को भी कभी कोई कड़वी बात नहीं कहनी चाहिए,
चान्द की चान्दनी हमेशा उसी की है ।

कैसी जे पुच्छनां जड़ियां-बूटियां ?
कैसी जे दिक्खना ठौगर द्वारा !
नईं मेरे बिच भूत मसान ऐ,
नां गै मेरे बिच खुट्ट खटाला !
नईं तूं फेरेश्रां छिल्लड़ू बक्करू,
नईं तूं फेरेश्रां कुक्कड़ काला !
मिगी लुट्टी-त्रुट्टी-पुट्टी सुट्टी गेया,
रामधना ! ओ बौंसरी वाला !
करां बी के होर बस्स निं चलै दा,
मन लग्गी गेश्रा मेरा उन्दै कन्ने !
दरणा भर कुसैंगी मन्देयां निं बोलना,
चन्दै दी चान्दनी चन्दै कन्ने !!

इस आखरी पद्य में कवि ने प्रेम की बड़ी मार्मिक झलक प्रस्तुत की है । दुनिया के अनजान लोग 'प्रेम की पीर' का स्वरूप क्या पहचानें ? प्रेम के घायल प्राणी को देख कर वे समझते हैं कि इसे किसी ने जादू कर दिया है । रोग की सही तशखीस हुए बिना भला उसका इलाज कैसे हो ।

अरे तुम जड़ी-बूटियों के बारे में क्यों पूछते हो ? मन्दिरों और देव-स्थानों को क्यों देखते हो ? (तू जो कुछ समझ रहा है वैसी बात नहीं है ।) न तो मुझ में कोई भूत-मसान आ गया है, और न ही किसी ने कुछ जादू-खोट खिला दिया है । इस लिए तू काला बकरा और काला मुर्ग बलि देने की (व्यर्थ बातें) मत सोच । ऐ रामधन ! मेरा सर्वस्व तो वह बांसुरी वाला ही लूट कर ले गया है । क्या करूं ? मेरा कोई बस नहीं चलता ! मेरा मन तो उसी का बन्दी हो गया है !

स्व० पं० हरदत्त शास्त्री



कियां गुजारा तेरा होग ओ डोगरेया देसा !

★

पं० हरदत्त शास्त्री !

किश्रां गुजारा तेरा होग श्रो डोगरेया देसा !

—हरदत्त

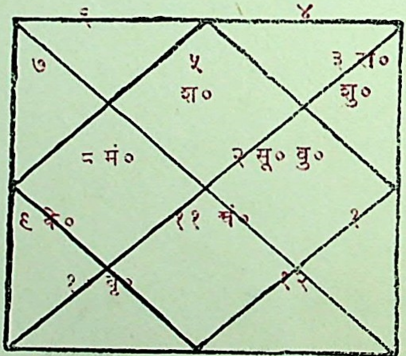
(ऐ मेरे डोगरे देश ! तुम इस दुनिया में कैसे चल सकोगे ?)

श्री हरदत्त शास्त्री

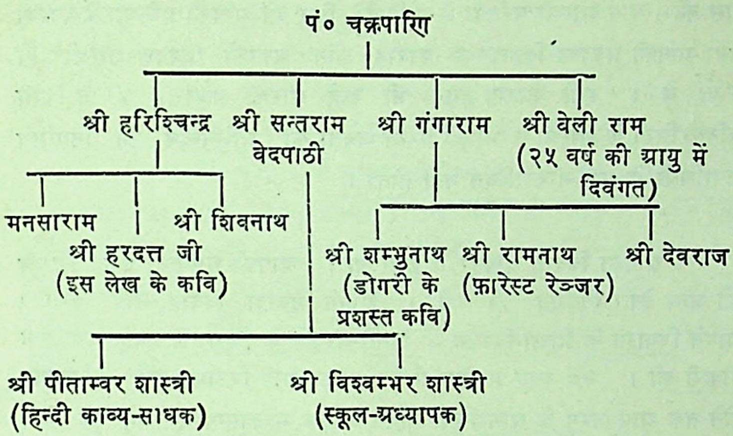
जन्म	मृत्यु
आषाढ़ सं० १९४७ वि०	सं० २०१३ वि०
सन् १८९० ईस्वीय	१३ अप्रेल १९५६

डोगरी साहित्य की परम्परा के पद-चिह्नों के नाम पर हमने दत्तु, के वंशज कवियों में से शिवराम तथा रुद्रदत्त का उल्लेख पीछे किया। स्व० महाराजा रणवीर सिंह के समकालीन पं० गंगाराम और स्व० महाराजा प्रतापसिंह के समकालीन ला० रामधन के परिचय से केवल इतना ही सिद्ध हुआ कि डोगरी कविता की एक परम्परा है लेकिन उपलब्ध सामग्री इतनी अल्प है कि उसके आधार पर इस परम्परा का कोई निश्चित स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता। डोगरी का सुनिश्चित साहित्यिक विकास स्व० पं० हरदत्त शास्त्री जी से ही शुरू होता है।

हरदत्त जी जम्मू शहर से कोई दो-तीन मील दूर पलौहड़ा (पलाश गढ़) नामक ग्राम में पैदा हुए। श्री पीताम्बर शास्त्री (सुपुत्र श्री सन्त राम जी वेद पाठी, पक्की ढक्की जम्मू) के सौजन्य से हरदत्त जी की जन्म कुण्डली भी प्राप्त हुई जो मूल रूप में कवि ने अपने कर कमल से एक पत्र में उन्हें लिखी है। जन्म कुण्डली इस प्रकार है :—



इनके दादा पं० चक्रपाणि चार बेटों के पिता थे। दादा से उनकी वंश-तालिका इस प्रकार है :—



इस तालिका से ज्ञात होगा कि दत्तु के वंश के समान पं० चक्रपाणि के वंश ने भी हमें दो प्रशस्त साहित्य-साधक दिए हैं। हरदत्त जी के पिता पं० हरिश्चन्द्र स्व० महाराजा रणवीर सिंह जी के बन्दूकियों में रहे, फिर जम्मू में वर्फ के सरकारी कारखाने के व्यवस्थापक बने और महाराजा के स्वर्गवास होने के बाद श्री प्रताप सिंह जी के समय में आप उनकी पूजा में नौकर रहे। आपको शिकार का बड़ा शौक था। वे रहते अपने गांव (पलौहड़ा) ही में थे। जहां वे हकीमी भी करते थे और गांव के पंच भी थे। गांव में ये बच्चों को अपने घर बुला कर अक्षर-बोध कराते, पढ़ाते। बच्चों को बालवोध, कलम-दवात ये अपने पास से ले दिया करते थे। गांव के लोग उन्हें श्रद्धा और प्यार के कारण 'भाइया' (बड़ा भाई) कहते थे। स्वभाव के अत्यन्त रसिक और मिलन सार थे परन्तु दुर्भाग्य वश इनके बच्चे जीवित नहीं रहते थे। पहले सात बच्चे जन्म लेने के अनन्तर पान्च-सात वर्ष की आयु तक पहुँचते २ इहलीला समाप्त कर गए।

हरिश्चन्द्र जी ने शिकार छोड़ दिया, सात्विक वृत्ति धारण करके शंकर की पार्थिव पूजा शुरू कर दी। उनकी जीवित सन्तान (हरदत्त जी का भाई मनसाराम जन्मान्ध थे। इन आघातों ने उनके हृदय को छलनी कर दिया। अगली सन्तान हरदत्त जी थे जिन्हें पांच वर्षं की आयु में सन्तराम जी वेदपाठी अपने पास ले आए। हरदत्त जी का विद्यार्थी जीवन वेदपाठी जी के संरक्षण में परवान चढ़ा। आप कुछ वर्ष तक वेदपाठी जी के साथ उत्तरवाहिनी के संस्कृत विद्या-केन्द्र में पढ़ते पहे। आप ने विशारद परीक्षा

पास की। आप शास्त्री परीक्षा में नहीं बैठे, फिर भी आपकी प्रतिष्ठा के कारण तथा आपकी प्रकाण्ड विद्वत्ता के कारण लोग आपको 'हरदत्त शास्त्री' ही कहते थे। इसी कारण हमने भी इन्हें शास्त्री कहा है। ये किसी यूनिवरसिटी के शास्त्री न भी हों परन्तु जनता का अभिनन्दन उन नियमित उपाधियों से कम गौरवान्वित नहीं होता।

आपका विवाह अखनूर में हुआ था। आपकी धर्मपत्नी एक ही पुत्र को जन्म देकर दिवंगत हो गई। आपने दुबारा विवाह नहीं किया। आपने रियास्त के शिक्षा-विभाग में हिन्दी-संस्कृत के रूप में कई वर्ष तक नौकरी की। २८ रुपए मासिक पैन्शन पाकर आप रिटायर हुए। रिटायर होने तक आप जम्मू के सामाजिक जीवन के एक महत्वपूर्ण अंग बन चुके थे। अध्यापक होकर आपको जम्मू प्रान्त के अनेक प्रदेशों में रहने और लोगों से घुलने-मिलने का सुयोग मिला। इसी मिलन से अपने देश की सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की दयनीयता से आपका कवि-हृदय द्रवित होता रहा। धरती की वही ममता; उसकी दरिद्रता पर, उसके अज्ञान पर उमड़ने वाली करुणा, कवि हरदत्त की डोगरी कविता बन कर समय-समय पर उबल पड़ती थी।

हरदत्त जी जनता में कथा-वाचक के रूप में लोक प्रिय थे। डुग्गर के धार्मिक जीवन में शायद ही कोई दूसरा स्थानीय कथावाचक इतना जन-प्रिय हुआ होगा। उनकी इस सर्व-प्रियता का मुख्य कारण था उनकी डोगरी रचनाएं। जम्मू के लोग धार्मिक प्रवृत्ति के तो हैं ही, कथा-कीर्तन से उन्हें स्वाभाविक रुचि हैं। फिर हरदत्त जी की वाणी में तो विशेष रस था, विद्वत्ता थी, मर्म छूने की क्षमता थी। परन्तु उन्होंने स्वयं एक बार मुझसे स्वीकार किया था कि उनकी कथा के श्रोताओं में उनकी कविताओं, विशेषतः डोगरी कविताओं के लिए बड़ी उत्सुकता रहती थी।

ऐसा सुयोग तो किसी साधक को बड़े ही भाग्य से मिलता है कि उसके मन में देश की ममता भी हो, देश की वेदना को समझने वाला दिल भी हो, उसके स्नेह से आकुल कवि-कल्पना भी हो और फिर उसे अपने मन की बात सुनाने के लिए उत्सुक श्रोता भी उपलब्ध हों।

हरदत ऐसे ही साधक थे। उनका कथा-कीर्तन, उनकी धार्मिकता

सभी जैसे डुग्गर के उस आकुल-मानस कवि के, लोगों को जुटाने के साधन मात्र थे। साध्य था डोगरी की एक-आध कविता के माध्यम से उनको ऐसी बात कहना जिसे सुनकर वे हंसते, आनन्द अनुभव करते। जैसे किसी दूसरे की बात सुन रहे हों। परन्तु कथा के बाद चेतनता के गम्भीर क्षणों में वही हंसी एक व्यंग्य बन जाती। मन में जैसे कुछ चुभने लगता और आंखों के सामने वही शब्द, व्यंग्य करते हुए, अपनी पैनी अंगुलियों से उन्हीं की ओर ईशारे करते हुए प्रतीत होते। "यह तो मेरे ही घर की बातें हैं"-पण्डित जी ने देश की दशा का कितना सही चित्र उतारा है। "कैसी बात कही है उन्होंने ?" हंसी के पहले क्षण एक चुभन बन जाते। मन दर्द से कराहने लगता। ऐसी थी प० हरदत की डोगरी कविता !

के आखां मेरेया देसा ! तेरा के हाल होना ऐ ?

—ऐ मेरे देश मैं क्या कहूँ ? तेरा न जाने अभी क्या हाल होगा ? यह एक पंक्ति हमें उस साधक हृदय की अतल करुणा की हिलोरों तक ले जातीं है ! इस गीत की परिधि की व्यापकता को देख कर जैसे उन्होंने अपने श्रद्धावनत श्रोताओं के नीचे की मट्टी की ओर ईशारा करके कहा था:—

किआं गुजारा तेरा होग, ओ डोगरेया देसा !

—ऐ मेरे डोगरे देस (इस दुनिया में) तुम कैसे जियोगे ? क्यों इस चिन्ता का कारण क्या था ? कारण ?

रंग बदले सबनें देसें, तूं रेआ उयै खुद रंग !

—सभी देश अपना रंग-ढंग बदल (कर आगे निकल) चुके हैं, लेकिन तू अभीं उसी अपने पुराने रंग में डूबा हुआ है।

अक्खीं मीटी लेइयां पक्क लोको !

—निश्चय पूर्वक इसने जैसे अपने चारों ओर की प्रगति के बारे में अपनी आंखें बन्द कर रखी हैं। परिणाम यह है कि :—

लखै थमां बनी गेया कख लोको ! देस परमेसरै पार लाना !

—हमारा वह पुरातन गौरव मट्टी में मिल चुका है। अब भगवान् ही

को किनारे लगा सकेंगे । इस लिए :—

सज्जनो, अपना आप बनाओ,
आपूं जागो देसै गी जगाओ !

—ए मेरे देश के प्रेमी मानवो, पहले अपना सुधार करो, स्वयं जागो, फिर देश को भी जगाने का यत्न करो ।

वरमी कुट्टे दे सप्प निं मरदे, लोक रोगै दा लाज निं करदे !

—वाम्बी को कूटने से सांप नहीं मरते । लोग हैं कि बीमारी का ठीक २ इलाज नहीं करते ! इसी का फल है कि :—

खज्जल ख्वारियां जी, जम्मे लाल ते वंडें कोले !

—आज देश बरबादी की दशा में है ! ऐसे सपूत पैदा होने लगे हैं जिन के जन्म पर कोयले बांटे गए !

उनकी सारी डोगरी कविता इसी तरह की वेदना, व्यंग्य और करुणा से मर्म छूने वाली है ।

वैसे पंडित जी ने डोगरी के इलावा संस्कृत, हिन्दी तथा पंजाबी में भी कविता का प्रयास किया था, परन्तु वह मेरी दृष्टि में केवल अपने श्रोताओं के कुछ वर्गों को प्रसन्न करने भर के लिए । हिन्दी में उन्होंने सम्भवतः डोगरी से कहीं अधिक लिखा, पंजाबी में भी उनके पद्य परिमाण में डोगरी पद्यों के बराबर ही होंगे परन्तु उनकी हिन्दी भक्ति काव्य में तथा पंजाबी कविता में न तो वैसी मार्मिक अनुभूति है न कलात्मक अभि व्यक्ति न हृदय को छूने वाला व्यंग्य, और न कोई नई भावना का लावण्य । वे कथा-वाचक थे, सभी तरह के लोगों को बहलाना उनका कौशल था । कइयों से मन की बात करते थे, दूसरों का मनोरंजन करते थे । डोगरी के माध्यम से उन्होंने अपनी धरती का उद्बोधन किया है, इसी लिए उनकी समस्त साधना में उनके डोगरी के पद ही प्रमुख हैं, वास्तविक हैं । वही उनकी अमूल्य थाती हैं । अपने देश को उनके यही डोगरी-पद्य कए अमर उपहार हैं ।

पण्डित जी ने एक छोटा सा प्रेस भी चलाया था । एक-आध

समाचार पत्र (साप्ताहिक 'दीपक') में योग भी दिया था परन्तु मू
थे, सरल भावुक ! इन व्यावहारिक बातों के लिए अपेक्षित कौशल
था। अन्दर ही अन्दर उनकी आर्थिक दशा में कठिनाइयां आ
एकलौते बेटे के प्रति असाधारण वात्सल्य ने उसे भी इस योग्य न
दिया कि वह ही प्रेस आदि का सुचारु सञ्चालन कर पाता । १९५७ क
बाद जब मैं डोगरी के इस नव जागरण में उनका योग पाने की आशा से उन्हें मिला उस समय वे बड़े ही क्लान्त श्रान्त दिखाई दिए । मन में उमंगें थीं परन्तु तन की दुर्बलता तथा चिन्ता-ग्रस्त बुद्धि उन उमंगों को आकार नहीं लेने देती थी ।

फुट्ट इस देसै आली कालै दी नशानी ऐ !

(फूट इस देश के लिए विनाश का चिह्न है !) उनकी ज़ोरदार अन्तिम कविता थी जो उन्होंने हमारे सम्पर्क और अनुरोध को बहलाने के लिए लिखी थी । इसके बाद पता चला कि वे जम्मू छोड़ कर कहीं चले गए हैं । कहां ? कोई पता न था । एक-दो वर्ष के अनन्तर ज्ञात हुआ कि वे बम्बई में हैं और वहां संस्कृत के प्रसिद्ध प्राचीन मुद्रणालय (Press) श्री वेंकटेश्वर प्रेस में काम करते हैं । जीवन की उस ढलती सन्ध्या में प्रेस में नौकरी करना एक अत्यन्त दीन विवशता का परिचायक है ।

वहीं १३ अप्रेल १९५६ में उनका देहावसान हुआ । प्रेस ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन के लिए उनकी हिन्दी रचनाओं (भक्ति गीतों) का एक संग्रह 'भगवत् पदी' के नाम से प्रकाशित किया है । ऐसे थे श्री हरदत्त । ऐसा था उनका उदयास्त ! उनका उदय जहां हमारे लिए गौरव का कारण बना, उनका यह दयनीय अवसान हमारे लिए एक लज्जा की सिहरन होना चाहिए ।

फुट इस देसै वाली कालै दी नशानी ऐ !

राज देइयै पिच्छुग्रां रंगेज हत्थ मलै दा सा,
बिस्तरा पलेटै दा सा, चीज बस्त सलैदा सा,
जाने गी त्यार सा, बिचो—बिच जलैदा सा,
पता नईं सा जन्दे--जन्दे इन्ने ग्रग्ग लानी ऐ ! फुट्ट इस...

घरैं दे कुग्राड़यें तुग्राड़ी गल्ल मन्नी लेई,
ग्राखै नइयों लग्गे नेईं पक्की जिद्द बन्नी लेई,
घरैं वाली सारी छोड़ी, बक्खरी गै खन्नी लेई,
मनै बिच बस्सी गई नेईं बेइमानी ऐ ! फुट्ट इस...

उम्बलो खड़ोते, साड़ी इक बी निं मन्नी इनें,
ने मच्छरे जे सारै पाई दित्ती ग्रन्नी इनें,
मनें मुएं सुन्ना नेता इत्थों बन्नी बन्नी इनें,
उन्दी उयै जानन, ग्रसें ग्रपनी नवानी ऐ ! फुट्ट इस...

टब्बरें दे टब्बर इनें सुत्तो दे सुग्राली ग्रोड़े,
लक्खां जीब फूकी दित्तो, घर कुल्ले जाली ग्रोड़े,
बड़े बड़े उज्जलें कुलें दे दिए स्हाली ग्रोड़े,
लिखना बी कियां मेरी कम्बै करदी कान्नी ऐ ! फुट्ट इस...

फूट इस देश के लिए मौत की निशानी है !

सं० १९४७ में विदेशियों की दासता से मुक्त होते ही देश में जो साम्प्रदायिक दंगों की आग भड़क उठी थी उस पर कवि की आत्मा कराह उठी। उसने देश-वासियों को इस विषैली फूट से देश को बचाने की दुहाई दी। हरदत्त जी की यह आखिरी कविता है। इसे लिखने के जल्दी ही बाद आप जम्मू को हमेशा के लिए त्याग कर चले गए थे :—

राज देकर अंग्रेज पछता रहा था, हाथ मल रहा था। विस्तर लपेट रहा था, अ।ना सामान बान्ध रहा था। जाने के लिए तैय्यार था, और मन ही मन जल रहा था। हमें ज्ञान नहीं था कि जाते २ इसने ऐसी आग लगानी है। (ऐ लोगो !) इस फूट को इस देश के लिए मौत की निशानी जानो !

घर के कुल्हाड़ों (देश-द्रोहियों) ने उसका कहना मान लिया। हमारा कहा उन्होंने नहीं माना, ऐसी पक्की ज़िद बान्ध ली कि घर की समूची न रहने दी, बांट के लिए हठ ठान लिया। उनके मन में कोई ऐसी वेईमानी वस गई थी यह फूट ....

हम कहते रह गए और ये वेकावू हो गए। कि ऐसे बिगड़ खड़े हुए कि चारों ओर अन्धेर गर्दी मचा दी। मनों सोना लूट २ कर, वान्ध-त्रान्ध कर ये लोग ले गए। उनका किया हुआ वे जाने, हमें अपना कर्तव्य निभाते रहना है। यह फूट ...

सोए हुए परिवार के परिवार इन्होंने सदा के लिए सुला दिए, लाखों जीवित प्राणियों को जला डाला, घर-झौंपड़े फूंक डाले, वड़े २ उज्ज्वल कुलों के दीपक इन्होंने बुझा दिए, इनके कुकृत्यों का हाल लिखूं भी तो कैसे ? मेरी कलम काम्प रही है। यह फूट ...

मसां मसां सुक्खनें सरीनियें सराज थोआ,
इनें शुक्र कीता कुतै नमां कम्म काज थोआ,
कम्म नई थोआ तुन्दे डुब्बने गी ज्हाज थोआ,
बिच्चा दा त्रुट्टा दा भरोचै करदा पानी ऐ। फुट्ट इस...

अति होई गई हुन छोड़ो कुतै बस्स करो,
लोकेंईं तमासा दस्सी दस्सियै नि जस्स करो,
बड्डें दी बनाई दी नि होर खें—भस्स करो,
लऊयै वाले अक्खरें लखोनी तुन्दी क्हानी ऐ। फुट्ट इस...

जे किश होआ, होआ, मनै बिचा कड्डी देओ,
इस फुट्टा डैना दियां, जडां—बामां बड्डी देओ,
पिछले प्रेमै वाला भंडा फिरी गड्डी देओ,
बापू दे मनै'च जे ते तुसें ठण्ड पानी ऐ ?
फुट्ट इस देसै वाली कालै दी नशानी ऐ ॥

न जाने कितने अरमानों का फल यह स्वराज मिला, इन (पापियों) ने शुकर किया जो इन्हें नया काम मिल गया, लेकिन इसे काम मत जानियो, यह तुम्हें, तुम्हारे डूबने के लिए जहाज़ मिला है, जिसका पैंदा टूटा हुआ है और जिसमें पानी भर रहा है। यह फूट............

अब तो अति हो गई है, अब तो रुको, अब तो बस करो। दुनिया वालों को यह तमाशा दिखा कर नई कीर्ति मत पैदा करो, अपने बड़ों की उस अपूर्व कमाई को यूं धूल में न मिला दो। याद रखना, लहु की स्याही से तुम्हारी यह कहानी लिखी जाएगी। यह फूट............

जो कुछ हो गया, सो हो गया, अब उसको मन से निकाल दो। इस पापिन फूट की टांगें और भुजाएं काट डालो। आओ एक बार फिर पहले की तरह प्रेम-प्रीति का झण्डा लहराएं। यदि तुम लोग बापु (म० गान्धी) के मन में ठंडक पहुंचाना चाहते हो। यह फूट इस देश के लिए मौत की निशानी है।

मेरा देस !

के आखां मेरेया देसा ! तेरा के हाल होना ऐ ?
तुम्मी लगगा कुतै बन्नै क् सारी उमर रोना ऐ ?

कदें तूं उडरदा सा एं बिना स्हारै समानै पर,
अज्ज मुशकल होआ अपने पैरें तेरा खड़ोना ऐ ।

गेया सब किश गेया पर पोथियां बी साम्बियां लोकें,
तुगी नईं जाग आई तूं कदूं तकरा लटोना ऐ ?

फटै जेकर जरा टल्ला तरोपा ला उसी कोई,
अम्बर फटी गेया सारा किआं किआं सनोना ऐ ?

खाने बिच जे तुगी दिक्खै कोई तां सुच्च नईं लबदी,
छोई जा चूक टल्ले दी सनें टल्लें नलोना ऐ ।

के आखां मेरेया देसा ! तेरा के हाल होना ऐ ?

मेरा देस !

इस कविता में कवि भारत वर्ष की वर्तमान दयनीय दशा पर मन की वेदना प्रकट करता है। उसे दुःख है कि गौरव की उन उंचाइयों से आज यह पतन के कैसे गढ़ों में गिर गया है :

क्या कहूं. ऐ मेरे देश ! (न जाने आगे अभी) तेरा क्या हाल होगा ? क्या तू भी कहीं किनारे लगेगा, या सारा जीवन तुम्हें यूं ही रोना है ?

एक समय था जब तू बिना पंखों के भी आकाश पर उड़ता था, और आज अपने पैरों पर खड़ा होना भी तुझे मुश्किल हो रहा है।

तू अपना सब कुछ लुटा चुका है। तेरे गौरव-ग्रन्थ भी दूसरों ने ही सम्हाले। तेरी नीन्द अभी भी नहीं खुली ! तू और कब तक लुटता रहेगा !

यदि किसीका कोई वस्त्र कहीं से फट जाए तो उसे कोई सी भी ले। लेकिन हमारा तो मानो आकाश ही फट गया है, इसे कैसे सियेंगे ?

तेरे खाने-पीने में यदि देखें तो वैसी पवित्रता नहीं दीखती। लेकिन यदि किसी के वस्त्र का किनारा भी तुम से छू जाता है तो तुम वस्त्रों-सहित नहाने लगते हो !

क्या कहूँ ऐ मेरे देश ! तेरा, न जाने, अभी क्या हाल होगा ?

डोगरा देस !

किथां गुजारा तेरा होग, ओ डोगरेया देसा ?
सारे देस सुत्ते दे जागे, जागेया सारा जहान,
तूं सगुआं अग्गें कोला बी दित्ती लम्मी तान।
सौनेदा नईंयों बेला उट्ठियै अक्खीं ते बिन्द खोल ।।
ओ डोगरेया देसा ।

मूंह तेरा नईं पढ़ेया-गुड़ेया, बामें बिच निं जोर,
जङ्गें अन्दर आलस बड़ेया, पैरें बिच मरोड़।
छोड़ आलस, कर कारी, लुट्टी लेई जंदे निं तां चोर,
ओ डोगरेया देसा !

तेरे घरै बिच्च गंगा बगदी तारेया सारा लोग,
तूं मुंह बी निं धोता, तेरी किथां सद्गति होग ?
उट्ठ लाई लै गोता आलसै दे टल्ले परें खोल,
ओ डोगरेया देसा !

बदली जरा निं तेरी चाल, ओ डोगरेया देसा,
रंग बदले सबनें देसें तूं रेआ उयै खुद रंग।
सुख आया होरनें दै हिस्सै तेरे हिस्सै भुख नंग,
बक्खै बिच सुख नईं' रौन्दा, कट्ठै जेई नइयों मौज बहार।
ओ डोगरेया देसा !

कुसै घरै बिच गुग्गा नचदा, कुसै घरै बिच जड़ियां,
सारें देसें दे भूत प्रेत डैनां साड़ै आई बड़ियां।
जातरां करियै तेरा, दुआलें करनाई बेड़ा पार,
ओ डोगरेया देसा !

छोड़ कुतै हुन व्हैम मनै दा, बदल अपना ए ख्याल,
जेकर गल्ल नईं मन्नगा मेरी, होग उयै तेरा हाल।
प्रेमैं दी पोथी पढ़ेयां नईं तां होई जागा ठंठर पाल,
मुट्ठियां बट्टियै खिट्टां मार ओ डोगरेया देसा !

ऐ मेरे डोगरे देस !

इन दो कविताओं में कवि अपने डोगरा-देश की दुर्दशा पर करुणा के अश्रु बहाता है :—

कैसे गुज़ारा तेरा होगा ? ऐ मेरे डोगरे देश !

सभी देश नीन्द से जाग उठे हैं, सारा संसार जाग उठा है, और तू उल्टे, आगे से भी लम्बी तान कर सो गया है ! यह सोने का समय नहीं ! ज़रा आंखें खोल, उठ कर (देख तो लो)। ऐ मेरे डोगरे देश !

तेरे मुंह में विद्या नहीं, बाहों में बल नहीं, तेरी टांगों में आलस्य भरा है, (तेरे) पैरों में मरोड़ पड़ते हैं। आलस्य त्याग, कुछ यत्न कर, नहीं तो चोर घर लूट ले जाएंगे ! ऐ मेरे डोगरे देश !

तेरे घर में गंगा बहती थी, जिसने दूसरों का उद्धार किया, तूने उसमें अपना मुंह भी नहीं धोया, तेरी सद्गति कैसे होगी ? अब उठ एक गोता तो लगा ले, ये आलस्य के वस्त्र उतार कर फैंक दे ! ऐ मेरे डोगरे देश !

ए मेरे डोगरे देश ! तेरी चाल में क्यों कोई फर्क नहीं आया ? सभी देशों ने अपने पुराने रंग बदल डाले हैं, लेकिन तू अभी उसी पुराने रंग में है। दूसरों के हिस्से में सुख शान्ति आई है लेकिन तुझे केवल गरीबी और भूख मिली। अलग होने (फूट) में कभी कोई सुख नहीं रहता एकता के समान कोई दूसरी मौज-बहार नहीं है। ऐ मेरे डोगरे देश !

आज तेरे किसी घर में अगर गुग्गा नाचता है तो किसी में जादू-जड़ियां हैं ! जैसे, सभी देशों के भूत-प्रेत और डाकनियां हमारे हां ही आ गए हैं ! क्या इन्हीं 'दोआलों (जादू-जड़ियों के वैद्यों) के हाथों तुम्हारा कल्याण होगा ?

डोगरा देस !

(तर्ज़ :— रस्सी दा बनी जन्दा सप्प लोको !)

लक्खैं थमां बनी गेआ कक्ख लोको !
देस परमेसरैं पार लाना !

मेरियें गल्लें दा मन्दा निं मन्नना !
कियां आखां, औं आपूं गै सङना !

बिना आखे समां चंगा निं लंगना,
माफी देइयै सुनो सच लोको !
देस परमेसरैं पार लाना ॥१॥

साड़ै देसै दे ब्राह्मण विद्वान से,
राजपूत बड़े बीर बलवान से !

पिट्ठ नईं दस्सदे बिच मदान से ।
कड्डी दिन्दे वैरियें दी फक्क लोको !
देस परमेसरैं पार लाना ॥२॥

अज्ज छोड़ी दित्ती अपनी बिद्द्या,
भारी लेइयै छड़ा तमाकू शिक्केया ।

रंग समेंदा कोई मूल निं दिक्खेया,
अक्खीं मीटी लेइयां पक्क लोको !
देस परमेसरैं पार लाना ॥३॥

भुक्खियां मरदियां विधवा जनानियाँ,
रासधारियें दिन्दे दुआन्नियां !

गमां मोइयाँ बिना घ्या ते पानियां,
होआ कलजुग परतक्ख लोको !!
देस परमेसरैं पार लाना ॥४॥

डोगरा देश !

इस कविता में कवि ने डुग्गर की हीन दशा पर करुणा और रोष प्रकट किया है। कवि के हृदय की ममता, अपनी धरती की यह दशा देखकर चोट खाती है और वही वेदना, भावना के रंगों में रंग कर गीत बन जाती है :

लाखों की धन-सम्पत्ति भस्मावशेष हो गई है (देश अपने पहले गौरव को खो चुका है।) भगवान् ही अब इस देश की नाव किनारे लगाएंगे।

मेरी बातों से दुःखी मत होना। कहूं भी कैसे ? मैं स्वयं संकोच से रुक जाता हूँ। लेकिन, बिना कहे मेरे लिए समय काटना कठिन हो जाएगा। इस लिए मुझे क्षमा देते हुए मेरी ये बातें सुन लीजिए।

मेरे इस देश के ब्राह्मण पढ़े-लिखे विद्वान् होते थे, क्षत्रिय बड़े ही वीर और साहसी होते थे, जो युद्ध के मैदान में कभी भी पीठ नहीं दिखाते थे, (सामना होने पर) वैरियों का मान मट्टी में मिला देते थे।

लेकिन आज यहां के लोगों में विद्या-प्रेम नहीं रहा, अब तो केवल तम्बाकू पीने का शौक रह गया है। समय का कोई रूप-रंग ही नहीं पहचाना, जैसे हमने जान बूझ कर आंखें बन्द कर ली हैं।

विधवा औरतें भूख से तड़पती हैं, लेकिन रासधारियों (नट मण्डलियों) को दवन्नियां देने वाले रसिक बहुत हैं। गाएं बिना घास और पानी के भूखों मर रही हैं, आज कलियुग अपना पूरा रूप लेकर प्रगट हुआ है।

बड़ें बडेरें दियां धन्न खट्टियां !

साड़े बड्डे बडेरें दियां धन्न खट्टियां, धन्न खट्टियां !
साड़े बड्डे दियां उमरां बड्डियां, गुण बड्डे ते कमाइयां बड्डियां,
धर्म बड्डा करतूतां बड्डियां सुरगै दे बिच झंडियां गड्डियां !
धन्न खट्टियां !

सवै बरे तक तगड़े रौंदे, बेल्ले नईं से पल भर बौन्दे,
पूजा पाठ करदे नित रौन्दे, गल्लां सुनो जी तुस सब सच्चियां !
धन्न खट्टियां !

जिन्दे बड्डे ज्ञानी समदरसी, उन्दे जम्मे मद्दकी ते चरसी,
मरदे लबदे न तरसी तरसी, रगड़ी-रगड़ो पिछों गोडे अड्डियां !
धन्न खट्टियां !

लौकी उमर ते चढ़दी जुआनी, अमलें बिच गली गेई जिन्दगानी ,
सुक्की गेया ते, लबदा ई जियां कान्नो, भामें गिनी लौ बक्ख २ हड्डियां।
धन्न खट्टियां !

अज्जे कल्लै दे जुआन बचारे, सुक्का दा मूं विपदा दे मारे ,
चलदे मसां सोटियें दे स्हारे, रेई गेइयां हुन कंगियां-पट्टियां !
धन्न खट्टियां !

सज्जनो अपना आप बनाओ, आपूं जागो देसैगी जगाओ,
मौजें बिच नईं जनम गुआओ, इनें गल्ले नईं बसदियां त्रट्टियां !
धन्न खट्टियां !!

हमारे बड़े बज़ुर्गों की कमाई धन्य थी !

हमारे पूर्वजों की कमाई धन्य थी ।

हमारे पूर्वज दीर्घायु होते थे, उनमें असाधारण गुण थे, उनकी सफलताएं धन्य थीं ! उनका धर्म बड़ा था, उनके काम अपूर्व थे । उन्होंने तो स्वर्ग में भी जाकर झण्डे गाढ़ दिए थे । इनकी कमाई धन्य थी !

सौ वर्ष तक वह शक्तिशाली रहते थे; एक पल भर भी वे बेकार नहीं बैठते थे । वे नियम से पूजा-पाठ करते थे । ऐ लोगो, सुनो ये सभी सच्ची बातें हैं । हमारे उन पूर्वजों की कमाइयां धन्य थीं !

जिनके वंश में ज्ञानी समदर्शी हो गुज़रे हैं, वहीं अब व्यसनी और निकम्मी सन्तान पैदा हो रही है जो तरस-तरस कर मरते दिखाई देते हैं, जिन्हें मृत्यु से पहले घुटने और एड़ियां रगड़नी पड़ती हैं अर्थात् भयंकर दुर्दशा देखना पड़ती है ।

छोटी उमर हो या चढ़ती जवानी हो, इनकी ज़िन्दगी व्यसनों में ही बीत जाती है । सूख कर पतली लेखिनी जैसी देह हो जाती है और एक-एक हड्डी अलग २ गिनी जा सकती है ।

आजकल हमारे तरुणों को तो कोई देखे ! सूखा हुआ मुख है, विपत्तियों से परेशान हैं । छड़ियों के सहारे बड़ी कठिनाई से चलते हैं । अब तो तरुणाई केवल कंघियों-तेलों में ही रह गई है ।

ऐ भले लोगो, अपना आप बचाओ, खुद जागो और देश को भी जगाओ । इन झूठी खुदियों में जीवन बरबाद न करो । इन ढंगों से कभी खानदान आबाद नहीं होते । हमारे बजुर्गों की कमाइयां धन्य थीं ।

हुन नमां जमाना जी!

हुन नमां जमाना जी सुखै बिच रौनेंदा!

रफ्फड़ पेग्रा दा घर-घर सारै, गली-गली ते साड़ै-थ्वाड़ै,
इक दुए गी बोलियां मारै, सुख नईं पाना जी।
सुखै बिच रौनै दा !

जदूं तक जागत रवै कुग्रारा, बब्बै लाडला, माऊ प्यारा,
नूं ग्राई तां पेग्रा पोग्राड़ा, चा चकाना जी।
सुखै बिच रौने दा।

कत्तना पिञ्जना कम्म भुक्खें दा, सीना-परोना प्हाड़ दुखेंदा,
ग्राई गेया हुन हाड़ सुखेंदा, रुड़दे जाना जी।
सुखै बिच रौने दा !

रुट्टी पकान्दे गरमी लगदी, भाण्डे माञ्जदे शैल निं लबदी,
नौकरें बाजू गल्ल निं फबदी, बाजा बजाना जी।
सुखै बिच रौने दा !

खर्च मता ते ग्रौन्दन थोड़ी, मसां गुजारा करदी जोड़ी,
सारी जफ्फी दी इयै मरोड़ी, जागत न्यारणा जी।
सुखै बिच रौने दा !

बरमी कुट्टे दे सप्प निं मरदे, लोक रोगैंदा लाज निं करदे,
मनो मन धुखदे बेदन जरदे, रोग निं जाना जी।
सुखै बिच रौनें दा !

सुख से रहने का यह नया ज़माना आन लगा है !

घर-घर में आज क्रन्दन मचा हुआ है, गली-गली में और मेरे भी और तेरे भी ! एक दूसरे पर व्यंग्य के वाण चलते हैं। भला ऐसे में सुख कैसे मिले ? यह नया ज़माना है !

जब तक बालक अविवाहित रहता है, बाप का लाड़ला और माता का प्यारा होता है। बस वहू के घर में पैर रखते ही, एक नई विपत्ति खड़ी हो जाती है । लेकिन (माता-पिता को तो) अपना चाव चुकाना था । यह नया ज़माना है !

(इस नये ज़माने में) लोग (रुई) कातने-धुनने को भूखों का काम बतलाते हैं, सीना-परोना दुःखों का पहाड़ लगता है। ऐसी यह सुखों (की झूठी कल्पना की) भयंकर बाढ़ आ गई है कि वह जाने से बचना असम्भव लगता है।

आज घरों में (नए युग से प्रभावित नारियों को) रसोई में काम करते गर्मी लगती है, वर्तन साफ करते शोभा में फर्क पड़ता है। विना नौकर के जीवन-निर्वाह कठिन हो गया है । परन्तु बाजे तो वजवाने ही थे ! यह नया जमाना है।

खर्च अधिक है, आमदन कम है। पति-पत्नी कठिनाई से गुज़र कर पाते हैं, घर में सारे झगड़े का मूल यही है। हमारा लड़का बेचारा ? तो बड़ा ही भोला है।' यह नया ज़माना है।

दीमक के घर कूटने से सांप नहीं मरता, और लोग हैं कि बीमारी का ठीक २ इलाज नहीं करते। मन ही मन जलते है और दुःखों को सहते हैं । इस तरह तो यह रोग दूर नहीं होगा ।

सुखों में रहने का यह नया ज़माना आन लगा है !

खज्जल खुआरो !

खज्जल खुआरियां जी, जम्मे लाल ते बंडे कोले।

पुत्तर जम्मन तां सर्वण, ते जां जम्मन ध्रुव प्रह्लाद,
कुल कलंक नईं जम्मन, भामें होऐं अट्टी बरबाद। खज्जल...

सब संस्कार गे ढिल्ले, ब्या ने पाया जोर,
शास्त्रें बिच लिखेदे थोड़े, आपूं बनाए होर। खज्जल...

मा पुत्तरै दे बोने गित्तै सुक्खनां करदी बावै,
पढ़न पवै चुल्ली ते मेरे जीन्दे लाड़ी आवै। खज्जल...

सट्ठें वरें दा बुड्डा, सेहरा लाइयै बनदा नट्टुया,
दन्द अन्दर नईं इक बी बाकी, मुंह बनेयां दा बट्टुया। खज्जल.

ब्या करियै बाबा तौले गै लैन्दा लम्मी छुट्टीं,
बिधवा फिरदी दर-दर, देसा ! किसमत तेरी खुट्टी ! खज्जल...

चंगें दै घर पंगे जमदे, चतरें दै घर चट्टू,
कोई मंगदा फिरदा टुगड़े, कोई भाड़ै दा टट्टू।
खज्जल खुआरियां जी, जम्मे लाल ते बंडे कोले।

नष्टस्य काऽन्या गति ?

(देश और जाति की) बरबादियां न हों तो क्यों ? (देश में) ऐसे सपूत उत्पन्न हुए हैं, जिनके जन्म पर कोयले बांटे गए ।

पुत्र पैदा हों तो श्रवण जैसे, या फिर ध्रुव-प्रहलाद सदृश । कुल कलंक कभी पैदा न हों, चाहे नपूता रह कर वंश बरबाद हो जाए ।

बाकी सभी संस्कारों में तो शिथिलता आ गई है, लेकिन विवाह के बारे में उतना ही ज़ोर बढ़ गया है । शास्त्रों में तो आवश्यक चन्दबातें ही लिखी थीं, लेकिन लोगों ने उनमें अपनी ओर से कई और जोड़ ली हैं ! कैसी बरबादियां हैं !

माता बेटे के विवाह के लिए 'बाहु' में (काली देवी के पास) मनौतियां मानती है । पढ़ाई-लिखाई चूल्हे में जाए, उसे (मां को) तो यही चाव है कि उसके जीते रहते घर में बहू आ जाए । कैसी बरबादियां हैं !

(कई बार तो) साठ बरस का बूढ़ा भी सेहरा लगा कर 'नट' (भाण्ड) बन जाता है । मुंह में एक भी दान्त साबित नहीं है और मुंह ऐसे दीखता है जैसे चमड़े का पुराना बटुआ हो । कैसी बरबादियां हैं !

ब्याह के जल्दी बाद ही बूढ़ा तो लम्बी छुट्टी लेकर चला जाता है । और (जवान) विधवा को दर-दर की ठोकरें खाना पड़ती हैं । ऐ मेरे देश तेरे भाग्य कैसे फूटे हुए हैं ?

भले लोगों के घर धूर्त जन्म लेते हैं, चतुर-कुशल व्यक्तियों के हां अकर्मण्य जन्मते हैं । उन्हीं को बड़े होकर या तो भीख मांगनी पड़ती है या फिर भाड़े का टट्टू बनकर जीवन का भार ढोना पड़ता है ।

ये कैसी बरबादियाँ हैं !

फैशन !

देसैगी बगाड़ियै सुट्टेया ओ, इनें फैशनें जी !
रंग समेंदा नि समझेया नि दिक्खेया,
अरजन ते भीम बनना नि सिक्खेया !
लेई दुरजोधनै वाली गै सिक्खेया,
कुल्ला फूकी-फाकी सुट्टेया ओ ! इने फैशनें जी !
अपने देसै दा लाबा बसारेया,
धोती कुरता, सिरा साफा तुआरेआ !
बालें दा खक्खरा लाडें सोआरेया
सूटें—बूटें कन्ने जुट्टेया—ओ !! इनें फैशनें जी !
कच्चियाँ लगदियां गल्लाँ परानियां,
वेदें-शास्तरें गी आखदे कहानियां,
तन्द नि त्रुटटी ए, त्रुटियां तानियां
धन्न समेया ! तुगी पुट्ठेया ओ !!

जनान्नियें दा पंजमाँ वेद !

साड़ियें देवियें जी, अजें नईं असली गल्ल पशानी !
अज घरै बिच नइयों शान्ति, नइयों पैहला ठाठ ।
जो मरजी आई सो कीता, धरम मारेया काठ ।। साड़िये देवियें :
हुन नइयों रेई पति दी सेवा, नइयों रेई ओ विद्या ।
जोर पेया बरतें पर, नइयों मन्नी शास्त्र-शिक्षा ।। साड़ियें देवियें :
आखो तां हुन छिड़दियां जियां धमूड़ियें दा खक्खरा !
चार वेद होरनें लोकें दें पञ्जमां इन्दा बखरा ।।
साड़ियें देवियें जी अजें नईं असली गल्ल पशानी !

फैशन !

इन फैशनों ने देश को बरबाद कर डाला है ! इन लोगों ने युग को न भली प्रकार देखा, न समझा। इनमें भीम और अर्जुन बनने की चाह नहीं है। इन्होंने तो दुर्योधन का ही रास्ता अपनाया है, और अपना ही घर फूंक डाला है !! इन फैशनों ने ......

अपनी वेश-भूषा ये भुला बैठे हैं, धोती कुरता त्याग दिया है; सिर से साफा उतार दिया है, आज सिर पर बड़े प्यार से बालों को पाला-पोसा जाता है, सूटों-बूटों में जैसे इन्होंने देह को कस डाला है !

आज इन्हें पुरानी सभी बातें बुरी लगती हैं, धार्मिक-ग्रन्थों को अब ये लोग कहानियां कहते हैं। एक तार नहीं टूटी है, ताना ही उलझ गया है। ऐ उल्टे समय ! तुझे धन्य है।

हमारी देवियों का पांचमा वेद !

हमारी देवियों ने अभी असली बात नहीं पहचानी है।

आज घरों में न पहली शान्ति है और न पहली बहार। जो जी में आया वैसा करने की मनमानी है और धर्म को जैसे पंगु बना दिया गया है, हमारी इन देवियों ने।

अब पति की सेवा का पहला भाव नहीं रहा, न इन में वह पहला विद्या-प्रेम ही रहा है। अब तो यदि जोर है तो व्रतों उपवासों पर। ये तो अब शास्त्र-शिक्षा को भी नहीं मानतीं।

यदि कोई उन्हें समझाए तो उस पर यूं झपटती हैं जैसे बर्रों का छाता। दूसरों के तो चार ही वेद थे। इन्होंने एक नया पांचवां गढ़ लिया है। हमारी देवियों ने अभी असली बात नहीं पहचानी है।

बेकारी !

(तर्ज : कियां गजारा तेरा होग ?)

लबदी कुतै नईं कोई कार, ते हुन कियां जीनां ?
कदें हुन्दा सा, इस देसै दा दूरै तगर बपार,
इत्थुयां दा बनेया दा कपड़ा जन्दा हुन्दा सा बार !
जानदी खलकत सारी, ढाके चंदरी वाला माल,
ते हुन कियां जीना ? लबदी कुतै नईं कोई कार !
ग्राट, लोड़खा, चक्की, चरखा, खड्डी जलाएं वाली,
इयै पंज मशीनां साड़ियां, उयै परानी चाली !
कुसै किश फर्क नि पाया, ऐसी बगी गई भेड़ी मार !
ते हुन कियां जीना ?
नइयों रेग्रा कोई कारीगिर ते नइयों रेई कोई कार !
देस सुन्ने दी खान सा पैहलें, ग्रज होग्रा लाचार !
घरै दी चीज नईं कोई, पैसा जन्दा ई सारा बार ।
ते हुन कियां जीना ?

बेकारी

(करने के लिए) कहीं कोई काम-काज नहीं मिलता, अब जीना कैसे होगा ?

एक समय था जब इस देश का व्यापार दूर २ तक होता था। यहां का बना हुआ कपड़ा बाहिर देशो में जाया करता था। सारी दुनिया जानती है कि ढाके और चन्देरी में तैयार होने वाले वस्त्र कैसे होते थे !

आज हम कैसे जिएंगे ? कोई भी काम-काज करने को नहीं मिलता।

घराट,कपास-वेलन, चक्की, चरखा और जुलाहों की खड्डी (करघा) उसी पुरानी ढंग की यही पाँच मशीनें आज भी हमारी पूंजी हैं, किसी ने भी उनमें कोई सुधार नहीं किया ! ऐसी दुर्दशा में हम डूबे रहे हैं।

अब हम कैसे जिएंगे ?

न तो देश में कोई (मौलिक) कारीगर रहा है और न कोई व्यवसाय-धन्धा ! यही देश जो कभी सुवर्ण की खान जैसा था, आज क्यों इतना लाचार हो गया है ? अब इस में जीवन-निर्वाह कैसे होगा ?

दालती दा धन्दा !

सरीक दिन्दे नइयों जीन, सारी खूसी लई जमीन,
नइयों खान नइयों पीन, जन्दा दालती दरौड़दा !

ग्राखै दिख जाई सनानां, तुगी ग्रज गै बनानां,
पैरें बेड़ियां पोग्रानां, ग्रौंदा चपड़ासी दौड़दा !!

गेग्रा दौड़दा तसीला, नइयों ल्याज ते बसीला,
दिक्खी होग्रा सैल्ला-पीला, फिरै हत्थैगी मरोड़दा !

दिक्खे ग्ररजी नबीस, लैन्दे मरजी दीं फीस,
नइयों पैसे दी कोई रीस, कम्म झट्ट करी छोड़दा ।।१।।

हुन्दा खज्जल खुग्रार, दिन्दा नइयों कोई दोग्रार,
कन्ने फाकें दी ग्रा मार, जेंठै म्हीन्ने दी दपैर जी !

फिरी पिछें परतोग्रा, कम्म बड़ा माड़ा होग्रा,
कन्ने धुप्पा जली मोग्रा, कोले होई गे न पैर जी !

ग्रगें कक्ख नइयों रेग्रा, गंडी पैसा न रपेग्रा,
कम्म कच्चा फसी गेग्रा, मेरे भा दा बड़ा कैर जी !

बन्दै, टूम-टल्ली सुट्टी, कन्ने गंडी बद्दी रुट्टी,
मसां पुज्जा हुट्टी-हट्टी, फिरी परतियै शैर जो ।।२।।

अदालत का धन्धा !

शरीक उसे जीने नहीं देते थे। उसकी सारी ज़मीन भी उन्होंने छीन ली थी। उसे न खाने की सुधि रही न पीने की। अदालत में (फरयाद करने) के लिए उतावला होकर बोला—

देख, अभी जाकर सुनाता हूं और आज ही तुम्हे कैद करवाता हूँ। आज ही देख लेना अदालत का हरकारा आएगा। तेरे पैरों में आज ही वेड़ियां डलवाऊंगा।

दौड़ता हुआ तहसील में जा पहुँचा, लेकिन वहां उसकी किसी से जान पहचान तक नहीं थी (कोई लिहाज़ न था कोई पहुँच नहीं थी) यह देख कर क्रोध में आया, घबराया, हाथ मलता हुआ घूमने लगा। वहां उसने अर्ज़ी-नवीस देखे जो मुंह मांगी फीस लेते थे। (वहां उसे ज्ञात हुआ कि अदालत में भी) पैसे जैसा कोई साधन नहीं। पैसा वहां सभी काम झट से पूरे कर देता था ॥१॥

पैसे के लिए उसे बड़ा दर-बदर होना पड़ा। कोई उसे उधार नहीं देता। ऊपर से उपवास करने पड़े और सिर पर जेठ के मध्याह्न की प्रखर धूप सहनी पड़ी। अदालत से घर को लौटा तो मालूम हुआ कि यह काम तो बहुत बुरा हुआ। एक तो धूप में जले, दूसरे पैर जल-जल कर कोयले हो गए। इधर गांठ के रुपये पैसे समाप्त हो गए। यह एक अजीव नई विपत्ति में जान आ फंसी है। यह तो मेरे लिए बड़ा कहर है।

(लाचार होकर) घर का भाण्डा-वर्तन गिरवी रखे, कपड़े में भोजन वान्धा और थकान से चूर होकर फिर शहर में पहुँचा।

पेई पैहली गै तरीक, नइयों पैसे दी थबोक,
कम्म होग्रा नइयों ठीक, कोई सिद्दा नइयों बोलदा !

इत्थें कुसी कुसी देयां, कच्ची फाई फसी गेयां,
पैर सबनें दै पेयां, पिच्छें फिरां हत्थ जोड़दा !

बड्डे मुनशी कोल गेया, मिगी निखरियै पेया,
मेरा चेता गै नि रेया, भोग्रा गंड की नि खोलदा ?

ग्रऊं इत्थें ग्राया भुल्ली, नेई जिमीं पवो चुल्ली,
जारो दालती दा कम्म पैसें बाजू नइयों सौरदा ।।४।।

(ग्रगली तरीका)

दालती'च पुज्जा गै तां, चमकी गे ग्राई मिकी,
पलची गै गेया जियां, धमूड़ियें दा खक्खरा ।

खीसे ले फरोली सारे, पैसे सै कडाई लैते,
भिडियें-कण्डोलियें दा, बुशका सै बक्खरा ।

पिछली तरीका जिसी, पञ्ज देई गेग्रासा ग्रज,
दूरै दा ग्रो ग्राले मारै गल्ल सुन जक्करा ।।

मुनशी बकीलै दा सै जिन्द गै नि छोड़ै मूल,
पिछें लग्गा ग्राया मेरै पक्के डंगे तक्करा ।।५।।

पहली ही तारीख (पेशी) थी, लेकिन उस वक्त भी मेरे पास पैसे की सामर्थ्य नहीं रही थी। यह काम अच्छा नहीं हुआ। यहां तो कोई सीधे मुंह बात भी नहीं करता। यहां किस २ को दूं? कैसी मुसीबत में आन फंसा हूं। सभी के पैरों पर भी गिरा हूं। अब हाथ बांध कर पीछे २ घूमना पड़ रहा है। बड़े मुन्शी के पास गया तो नाराज़ होकर बोला 'तुम्हें मेरी याद नहीं आई?' बुद्दू! यह गांठ क्यों नहीं खोलता? अरे यहां आकर भूला, ऐसी ज़मीन जाए चूल्हे में। दोस्तो अदालती काम बिना पैसे के नहीं हो सकते ॥३॥

(अगली पेशी पर)

अगली पेशी पर वहां पहुँचा ही था कि चारों ओर से आकर उन्होंने मुझे घेर लिया। ऐसे लिपट गए जैसे बर्रों का छत्ता ही आकर चिपट जाए। सभी जेबों की तालाशी ले ली। जो पैसे थे वे सब उन्होंने निकाल लिए। भिण्डियों तरकारियों का टोकरा था, सो वह भी लूट लिया।

पिछली पेशी पर जिसे पांच दे गया था वह दूर से मुझे बुलाने लगा—अरे बुद्दू! ज़रा इधर आ!

इधर यह मेरे वकील का मुन्शी है कि बस एक क्षण के लिए परे नहीं जाता। वह तो पक्के डंगे तक मेरा पीछा करता हुआ आया।

कुसै इक कुसै दो, कुसै घा कुसै भो,
कुसै गन्ने, कुसै रौ कुसै गितै सण धोचदी !

इनें फरमासें फंगताल करी दित्ता मिगी,
ठौगरें तोड़ी बी मेरी सूंक नईं सनोचदी ।

कुन दिन होए मिगी ऋप्पड़ धरीड़दे गै,
दुखिये गरीबें गित्तै सरकार बी निं सोचदी ।

भुज्जी-भुज्जी सुड़ी गेआं, चिन्ता बिच कुड़ी गेआं,
पापें वाली बेड़ी इन्दी, अजें बी निं भरोचदी ।।६।।

खसमै गी खाओ, जिमीं जन्दी ऐ तां जाओ,
नईं मता किश आओ, मिगी साग ढोडा लोड़दा ।

निक-शुक ऐ सा सब गेआ पर कच्चे थार,
सारी आयु भर रेआ पैसा-पैसा जोड़दा ।

कुसै चंगे कम्म लान्दा, तामी चंगा फल पान्दा,
कुसै दुखियेगी दिन्दा दालती'च कैसी रोड़दा ?

जेत कुसै पुच्छना तां, मिगी आइयै पुच्छी लैयो,
दालती दा धन्दा खल्ल कियां कियां कोड़दा ।।७।।

किसी को एक वस्तु दी, किसी को दूसरी, किसी के हां घास का गट्ठर दिया, किसी को भूसा, किसी को गन्ने, किसी को गन्ने का रस; किसी के लिए सन धोनी पड़ती है। इन फरमाइशों ने मेरा दिवाला निकाल दिया है। हाए उस दयामय के द्वार तक भी तो मेरी फरियाद की पहुंच नहीं! कितने दिन हो गए हैं मुझे इस तरह यह फटे हुए जूते घसीटते? सरकार भी हम बेबसों के बारे में कुछ नहीं सोचती! (इन जलती धूपों में) झुलस झुलस गया हूं, इसी चिन्ता में सूख गया हूं, लेकिन ये, रिश्वतखोर कारिन्दे हैं, कि इनके पाप का घड़ा भरने में ही नहीं आता।

जहन्नुम में जाए, यह ज़मीन भी (हाथ से) जाती है तो (सौ बार) जाए। न मिलें मुझे आराम के अधिक साधन, मैं मक्की की रोटी और साग खा कर गुज़र कर लूंगा। घर में जो टूटा-फूटा भी था वह भी सब बरबाद हुआ! कैसे मैंने सारी उमर एक एक पैसा जोड़ा था। किसी भले काम में लगाता, तो मुझे भी कुछ अच्छा फल मिलता। किसी दुखिये को ही वे पैसे दे देता! अदालत के झगड़े में मैंने नाहक पैसे बरबाद किये। अगर (अदालतों के न्याय के बारे में) किसी को कुछ पूछना है, तो मुझे आकर पूछ ले—कि यह अदालत का धन्धा किस किस तरह चमड़ी उधेड़ लेता है।

कलिजुगै दी महमा !

बन्नो वेद पुराण पोथियां, कलजुग दौड़दा आई गेआ !
पाप घटां छाइयां ज्हान्नै पर, सारै न्हेरा पाई गेआ,
बन्नो वेद०

उलट-पुलट करियै धरमैगी पंथ नमें गै चलान लगा,
श्रद्धा ते विश्वास मनै थों लोकें दा सब जान लगा !
श्राद्ध पितर गौ ब्राह्मण पूजा दान धरम छुड़काई गेआ !
बन्नो वेद०

औन्दा गै मन्दरें जाई बड़ेया पन्तें गी समझान लगा,
ठौकरें दी पूजा छुड़काइयै अपनी खूब करान लगा ।
तिलक-धूफै दे पैसे बचाइयै सुक्कै ठौगर रगड़ाई गेआ ।
बन्नो वेद०

घरै-घरै परतो ए फिरेया, फैशन नमें जगान लगा,
जनेऊ चोटियां चटम कराइयै सिर नंगे रखोआन लगा ।
हवनें वाले सुरचे खूसियै चिमचे हत्थ फड़ाई गेआ !
बन्नो वेद०

धर्म-शालां सब बेल्लियां होइयां लग्गी शबील शराबै दी,
नाज खानेगी मन नईं आखै, लग्गी रसो कबाबै दी ।
गंगा जल तुलसी दल खूसी, जूठा पानी पलेआई गेआ ।
बन्नो वेद०

कलियुग की महिमा !

वेदों, पुराणों तथा दूसरे धर्म-ग्रंथों को बान्धो, बचाओ, कलियुग दौड़ता आ गया है !

पाप-घटाएं जहान पर घिर आई हैं, चारों ओर अन्धेरा छा गया है, सच्चे धर्म को तहस-नहस करके, नए पाखण्ड पूर्ण पन्थ चलाने लगा है। लोगों के हृदयों से श्रद्धा और विश्वास मिटाने लगा है। पितरों के श्राद्ध-तर्पण, गौ-ब्राह्मण की पूजा तथा दान-धर्म सभी छुड़ा गया है। कलियुग दौड़ता आ गया है।

आया और आते ही मन्दिरों में जा घुसा और पुरोहितों-पुजारियों को बहकाने लगा ! देवों की पूजा-अर्चना छुड़का कर अपनी आराधना करवाने लगा। पुजारी लोगों से तिलक और धूप के पैसे बचा कर इनके बिना ही भगवान की पूजा करवाने लगा।

प्रत्येक घर में यह चक्कर लगा कर नए नए फैशन जगाने लगा है। यज्ञोपवीत और चोटी साफ करवा के अब नंगे सिर रहने की प्रेरणा देने लगा है। हवन में काम आने वाले 'सुरचे' (स्त्रुवे) छीन कर उनकी जगह हाथों में चमच दे गया है ! देखो, कलियुग दौड़ता आ गया है !

सभी धर्मशालाएं सूनी पड़ी हैं, शराब के प्याऊ खुल गए हैं, (सात्विक) अनाज खाने की रुचि नहीं रही, जगह २ मांस-कबाब पकाए जा रहें हैं। कलियुग ने (हमारे घरों से) गंगाजल और तुलसीदल चुरा लिया है और सभी को जूठा जल पिलाने लगा है।

अरे अब वेदों, पुराणों तथा दूसरे धर्म-ग्रन्थों को बान्धो-बचाओ, कलियुग दौड़ता हुआ आ गया है !

(श्री कृष्ण जी गी धरती दा सनेया, ऊधो हत्थैं)

तर्ज : पल भर वेई जाना

ऊधो सनेया लेई जायां, लेई जायां, ग्रो
मेरियां गल्लां सारियां समझायां,
सारियां समझायां, ग्रो सनेया लेई जायां ।
जाई ग्राखेयां उस बंसी वालेगी, नन्द जसोधा दे प्राण प्यारे गी
मेरी सुरत लेई जायां ! ग्रो सनेया लेई जायां, लेई जायां, ग्रो ।
कियां बिसरी गेया बोल कीता दा, चेता भुल्ली गेया ग्रज गीता दा,
दर्शन मिगी देई जायां ग्रो ! सनेया लेई जायां ग्रो ।
ग्राइयै दिक्खी जायां हाल देसै दा, तेरियां पढ़ाई दिया पट्टिर्सा मेसै दा,
रुड़देंगी तोड़ पजायां, तोड़ पजायां ग्रो, सनेया लेई जायां, ग्रो
जित्थें बगदे से दुद्दै दे परनाले, उत्थें ग्रज ठेके शराबै वाले,
चलेया ई धरम बचायां, धरम बचायां ग्रो, सनेया लेई जायां...
ग्राई गेई ग्रा पच्छमै पास्सेया न्हेरी, उड्डरी चले वेद ते गीता तेरी ।
परतियै फिरी देई जायां, फिरी देई जायां ग्रो , सनेया लेई जायां...
उमरां घटी गेइयां, जोर रेया नईं, पाप बदी गे हंकार गेया नईं ।
हिस्सली दी जोत जगायां, जोत जगायां ग्रो ! सनेया लेई जायाँ ।
ऊधो सनेया लेई जायां, लेई जायां ग्रो !!

धरती का ऊधो के हाथ गोपाल को संदेश !

ऐ ऊधो ! मेरा यह सन्देश ले जाना ले जाना,
मेरी एक एक बात, अच्छी तरह उसे समझाकर सुनाना।
उस बाँसुरी वाले को, यशोधा के प्राण प्यारे को,
जा कर कहना कि आकर मेरी खबर तो ले जा !
किया हुआ वचन तुमने क्यों भुला दिया है ?
अपनी गीता की याद तुम्हें क्यों भूल गई है ?
एक बार आकर मुझे दर्शन तो दे जा,
आकर अपने देश का यह हाल तो देख जा।
तेरे पढ़ाए हुए सभी पाठ कैसे भुलाता जा रहा है,
(विपत्ति-धारा में) बहते हुओं को किनारे पर लगा जाना !
जहां कभी दूध की नदियां बहती थीं, वहां आज जगह २ शराबखाने खुले हुए हैं,
धर्म को इस गिरावट से बचा लेना, बचा लेना !
पश्चिम की ओर से एक तूफ़ान आ गया है,
जिस में वेद और तेरी गीता उड़ते जा रहे हैं।
इनको बचा कर एक बार फिर हमें दे जा;
आज इस देश में रहने वालों की उम्रें छोटी हो गई हैं।
इनकी बाहों में पहला बल नहीं रहा; पाप बढ़ गए हैं,
अहंकार दूर नहीं हुआ। हमारे गौरव की बुझी हुई ज्योति
को एक फिर जगा जाना।
ऐ ऊधो मेरा सन्देशा ले जाना !

लंका तेरी नइयों बचनी !

(वतर्ज़—छै)

ओ लंका तेरी नइयों बचनी ठैं, ओ जिद नइयों चंगी राजेया ठैं !
फल माड़ियें गल्लें दा माड़ा, ओ राजेया ! माड़ियें गल्लें दा माड़ा !
ते आई पुज्जा हुन अन्त काल थुआड़ा !
ते सिरै पर मारू बजदा ठैं ! ओ जिद नइयों चंगी राजेया !
धन-दौलत कन्ने नइयों जानी, ओ राजेया ! दौलत कन्ने नइयों जानी,
ते दिक्ख तेरी रोन्दियै मन्दोदरी रानी,
ते मुएं अग्गें काल गजदा ठैं ! ओ जिद नइयों चंगी राजेया !
उन्दे कन्ने तेरी पेश नइयों जानी, ओ राजेया पेश नईं जानी !
ते कुन्न करनाई तेरा पिछों पिण्ढ पानी !
ते कुल्लै तेरै झल्ल लगना ठैं !!
दिक्खी दिक्खियै अक्खियें नइयों रज्जना !
ओ राजेया अक्खियें नइयों रज्जना !
सुनी सुनियें कन्ने नइयों लज्जना,
ते जीब नइयों स्वादें रज्जनी ठैं ! ओ जिद नइयों चंगी !
ते गल्ल हरदत्तै दी सुट्टी नईं पायां,
ते नईं तां तेरा सैंख बज्जना ठैं !
लंका तेरी नइयों बचनी ठैं, ओ जिद नइयों चंगी राजेया !